प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

समस्याओं के ढेर

भारत समस्याओं से और प्रश्नों से भरा है। और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि हमारे पास उत्तरों की और समाधानों की कोई कमी नहीं है। शायद जितने प्रश्न हैं हमारे पास, उससे ज्यादा उत्तर हैं और जितनी समस्याएं हैं, उससे ज्यादा समाधान हैं। लेकिन एक भी समस्या का कोई समाधान हमारे पास नहीं है। समाधान बहुत हैं, लेकिन सब समाधान मरे हुए हैं और समस्याएं जिंदा हैं। उनके बीच कोई तालमेल नहीं है। मरे हुए उत्तर हैं और जीवंत प्रश्न हैं। जिंदा प्रश्न हैं और मरे हुए उत्तर हैं।

मरे हुए उत्तर हैं और जीवित प्रश्न हैं। और जैसे मरे हुए आदमी और जिंदा आदमी के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती ऐसे ही हमारे समाधानों और हमारी समस्याओं के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती। एक तरफ समाधानों का ढेर है और एक तरफ समस्याओं का ढेर है। और दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है, क्योंकि सेतु हो ही नहीं सकता। मरे हुए उत्तर जिस कौम के पास बहुत हो जाते हैं, उस कौम को नये उत्तर खोजने की कठिनाई हो जाती है।

अब प्रश्नों के साथ एक उलझन है कि प्रश्न सदा नये होते हैं। प्रश्न हमारी फिकर नहीं करते। समस्याएं हमसे पूछ कर नहीं आती हैं, आ जाती हैं। और वे रोज नई हो जाती हैं और हम अपने पुराने समाधानों को जड़ता से पकड़ कर बैठे रह जाते हैं। तब हमें ऐसा लगता है कि समाधान हमारे पास हैं और समस्याएं हल क्यों नहीं होती हैं? गुरु हमारे पास हैं और प्रश्न हल नहीं होते हैं। शास्त्र हमारे पास हैं और जीवन उलझता चला जाता है।

एक बुनियादी भूल, और वह यह है कि सब उत्तर हमारे पुराने हैं। हमने नया उत्तर खोजना बंद कर दिया है। और नये प्रश्न नये उत्तर चाहते हैं। नई समस्याएं नये समाधान मांगती हैं। नई परिस्थितियां नई चेतना को चुनौती देती हैं, लेकिन हम पुराने होने की जिद्द किए बैठे हैं। हम इतने पुराने हो गए हैं और हम पुराने होने के इतने आदी हो गए हैं कि अब हमें खयाल भी नहीं आता कि हम पुराने पड़ गए हैं।

हमारे देश के सामने इसलिए पहला जीता सवाल यह है कि हम मरे हुए उत्तरों को विदा कब करेंगे? उनसे हम छुटकारा कब पाएंगे? उनसे हम कब मुक्त होंगे? क्या कारण है कि हमने नये प्रश्नों के नये उत्तर नहीं खोजे? यही कारण है--अगर हमें खयाल हो कि हमारे पास उत्तर हैं ही रेडीमेड, तैयार, तो हम नये उत्तर क्यों खोजें? मन की तो सहज इच्छा होती है लीस्ट रेसिस्टेंस की; कम से कम तकलीफ उठानी पड़े। उत्तर तैयार हैं तो उसी से काम चला लें। एकबारगी हमारे देश को अपने पुराने उत्तरों से मुक्त और रिक्त हो जाना पड़ेगा तभी हम उस बेचैनी में पड़ेंगे कि हम नई समस्याओं के लिए नये उत्तर खोजें।

हमें अपने अतीत से मुक्त होना पड़ेगा तो ही अपने भविष्य के लिए निर्माण कर सकते हैं। हमें अपने शास्त्रों से मुक्त होना पड़ेगा तो ही हम चिंतन के जगत में प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा हर चीज का तैयार उत्तर हमें किताब में मिल जाता है। मुसीबत आती है, हम गीता खोल लेते हैं। मुसीबत आती है, हम कुरान खोल लेते हैं। मुसीबत आती है, हम मुर्दा गुरुओं के पास पहुंच जाते हैं पूछने कि उत्तर क्या है? हम हमेशा अतीत से पूछते हैं, बीते हुए दिनों से पूछते हैं। लेकिन दुनिया में एक बड़ी क्रांति हो गई है, वह समझ लेनी चाहिए। और अगर वह हम न समझ पाएंगे तो हमारे प्रश्न रोज बढ़ते जायेंगे और हम एक भी प्रश्न को हल न कर सकेंगे।

वह बड़ी क्रांति यह हो गई है--जीसस के मरने के बाद अठारह सौ पचास वर्ष में दुनिया में जितना ज्ञान बढ़ा, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में उतना बढ़ा। और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान बढ़ा उतना पिछले पंद्रह वर्षों में बढ़ा। आज हम पंद्रह वर्षों में अठारह सौ वर्ष का फासला पूरा कर रहे हैं। इतनी तीव्रता से ज्ञान बढ़ रहा है। पुरानी दुनिया को एक सुविधा थी। उसमें ज्ञान कभी बदलता ही नहीं था। और बदलता था तो इतना लंबा फासला होता था कि जिसका कोई हिसाब नहीं। हजारों वर्षों तक एक ही उत्तर काम देता था। अब दुनिया बदल गई है। अब हर पद्रंह वर्ष में उत्तर बदल जाएंगे। हर नई पीढ़ी नये उत्तर खोजेगी। बीस साल में एक पीढ़ी बदल जाती है। आज बाप और बेटे के बीच उम्र का तो बीस साल का फासला है, लेकिन अगर हम ठीक से गिनती करें, तो बाप और बेटे की पीढ़ी के बीच अठारह सौ साल का फासला हो जाता है। क्योंकि पुरानी दुनिया में अठारह सौ साल में इतना ज्ञान बढ़ता था, जितना आज पंद्रह वर्ष में बढ़ जाता है। इसलिए पुरानी दुनिया में एक सुविधा थी, पुराने उत्तर काम देते थे। जो बाप की जिंदगी में काम दिया था वही बेटे की जिंदगी में काम देता था, वही उसके भी बेटे की जिंदगी में काम देता था। अब यह नहीं हो सकता। और हमारी आदत पुरानी है। बेटा अब भी बाप से पूछने जा रहा है। बहुत कठिन है। उत्तर बाप के पास नहीं है। बाप के पास उत्तर है, लेकिन वह समस्या नहीं रही जिसका उसके पास उत्तर है।

पुरानी दुनिया में ठीक थी यह बात, बेटा बाप से पूछता था और बाप के पास उत्तर होता भी था। सच तो यह है कि पुरानी दुनिया में बेटे के पास प्रश्न होता था, बाप के पास उत्तर होते थे। आज हालत बिल्कुल उल्टी हो गई है। बेटे के पास प्रश्न हैं, बाप के पास उत्तर हैं, लेकिन उन प्रश्नों के उत्तर हैं, जो बेटे के प्रश्न नहीं हैं। और तब दोनों के बीच एक खाई खड़ी हो गई है। क्या आपको पता है कि इधर पिछले बीस वर्षों में सारी पृथ्वी पर पिता के आदर में कमी हुई है और गुरु के आदर में कमी हुई है? और सारी दुनिया में चिंता है। हमारे मुल्क में बहुत ज्यादा चिंता है। क्योंकि हम सबसे ज्यादा पिता को पूजने वाले और गुरु को पूजने वाली कौम हैं। हमारी पूरी संस्कृति ने पिता और गुरु और माता की पूजा सिखाई है। एकदम से कमी हुई है। हम सब चिंतित हैं कि यह क्या हो गया? लेकिन कारण का हमें खयाल नहीं है।

कुछ लोग सिखाते हैं कि लड़के बिगड़ गए हैं। लड़के सदा जैसे थे वैसे ही हैं। लेकिन एक क्रांति जीवन में आ गई है। वह क्रांति यह आ गई है कि पहले पिता ज्यादा जानता था, आज बेटे ज्यादा जानने की स्थिति में हैं। और इसलिए पिता जब ज्यादा जानता था और बेटा हमेशा कम जानता था। बेटा कभी ज्यादा नहीं जानता था। क्योंकि जानना आता था अनुभव से, और अनुभव करते-करते, बूढ़ा होते-होते पिता के पास ज्ञान हो पाता था। वही ज्ञान वह बेटे को देता था। आज हालतें बिल्कुल बदल गई हैं। आज हालतें ये हैं कि बेटा बहुत कुछ जानता है जो पिता ने कभी नहीं जाना। और उसके बेटे और भी बहुत कुछ जानेंगे जिनका पिता अंदाज भी नहीं कर सकता है। तो पिता के सम्मान में अनिवार्य रूप से परिवर्तन आना था। लेकिन अगर हम समझ जाएं तो हम उस परिवर्तन को समझदारी पूर्वक व्यवस्था दे सकेंगे। न समझ पाएं तो हम मुश्किल में पड़ जाएंगे। गुरु अब भी पुराना आदर मांगे, यह संभव नहीं है। पुराना आदर अब नहीं मिल सकता, क्योंकि गुरु को जो पुराना आदर मिलता था वह ज्ञान के कारण ही मिलता था। आज अक्सर यह होता है कि क्लास में पढ़ाने वाले प्रोफेसर में और विद्यार्थी में ज्यादा से ज्यादा घंटे भर का फासला होता है। वे घंटे भर पहले तैयार करके आए होते हैं, वे घंटे भर पीछे। अब घंटे भर के फासले पर बहुत आदर नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? और अगर कोई बुद्धिमान, प्रतिभाशाली लड़का हो तो गुरु से आगे आज हो सकता है। पहले कभी नहीं हो सकता था। क्योंकि अनुभव से ज्ञान आता था। और अनुभव में जीना पड़ता था। आज हालतें एकदम बदल गई हैं।

इन बदली हुई स्थितियों में जहां ज्ञान का तीव्रता से विस्फोट हो रहा है, एक्सप्लोजन हो रहा है, वहां हमें सारे के सारे उत्तर नये खोजने पड़ेंगे। पुराने उत्तर काम नहीं दे सकते। और भी एक मजे की बात है कि हमें यह पता ही नहीं चलता क्योंकि हम प्रश्नों के संबंध में कभी गहराई से सोचते ही नहीं कि प्रश्न क्या है? जिनके पास उत्तर तैयार हैं वे प्रश्न में खोज-बीन करने की दिक्कत में नहीं पड़ते। जैसे कोई बच्चा किताब उलटा कर गणित का उत्तर पीछे देख लेता है, फिर वह प्रोसेस, विधि करने की फिकर नहीं करता, फिर वह उत्तर लिख देता है। लेकिन उत्तर महत्वपूर्ण नहीं होते, महत्वपूर्ण हमेशा विधि होती है। विधि के बिना उत्तर का कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न पर सोचना ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि उसी से उत्तर निकलता है। लेकिन जिसके पास उत्तर तैयार हैं वह विधि पर सोचता ही नहीं, वह प्रश्न की गहराई में नहीं जाता। हम किसी प्रश्न की गहराई में ही नहीं जाते। हमारे पास उत्तर तैयार हैं। हमने उलटा कर किताब के पीछे उत्तर देख लिए हैं। बीच की प्रोसेस और मेथड का हमें कोई सवाल ही नहीं है। अगर हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए तो हमारे पास उत्तर तैयार है, लेकिन हम समस्या की गहराई में जाने की इच्छा नहीं रखते।

और मजा यह है कि शायद यह भी डर है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम जो उत्तर देते रहे हैं, वही हमारे प्रश्न के आधार में बुनियादी जड़ हो? जिसे हम समाधान कहते हैं कहीं वही तो हमारी समस्या को पैदा करने वाला नहीं है? अगर हिंदू-मुसलमान लड़ते हैं तो हम हिंदू को समझाते हैं कि तुम अच्छे हिंदू बनो। मुसलमान को समझाते हैं कि तुम अच्छे मुसलमान बनो। मुसलमान धर्म भी बहुत अच्छा है, हिंदू धर्म भी बहुत अच्छा है। दोनों धर्म एक से हैं। तुम अच्छे मुसलमान बनो, तुम अच्छे हिंदू बनो। तुम मस्जिद ठीक से जाओ, तुम मंदिर ठीक से जाओ। मैं कभी सोचता हूं कि जब कच्चे मुसलमान और कच्चे हिंदू इतने खतरनाक होते हैं तो सच्चे हिंदू और मुसलमान कितने खतरनाक हो सकते हैं! लेकिन हमारा खयाल यह है कि अगर हिंदू अच्छे हिंदू हो जाएं और मुसलमान अच्छे मुसलमान हो जाएं तो झगड़ा खत्म हो जाएगा।

नहीं, भ्रांति है। हमारा पुराना रटा-रटाया उत्तर है, वह हम दिए चले जा रहे हैं। वह हम कहे ही चले जा रहे हैं। हम यही समझाए चले जा रहे हैं कि अच्छे हिंदू बनो, अच्छे मुसलमान बनो। धर्म तो किसी को लड़ना नहीं सिखाता, और सब धर्मों ने लड़ना सिखाया है। असल में जो भी आदमी-आदमी के बीच फासले पैदा करता है वह लड़ना सिखाएगा ही। जो भी आदमी-आदमी के बीच खंड करता है वह लड़ना सिखाएगा ही।

राजचंद्र को गांधी जी ने कुछ पत्र लिखे थे। और गांधीजी ने एक प्रश्न में उनसे पूछा है कि आप जैन धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं? राजचंद्र जैसे बुद्धिमान, विचारशील साधु पुरुष ने भी यही उत्तर दिया है कि जैन धर्म ही श्रेष्ठ है। इसलिए मैं श्रेष्ठ मानता हूं। गांधी जी भी हिंदू धर्म को श्रेष्ठ धर्म मानते थे और गांधीजी भी अपने को जीवन भर हिंदू कहते रहे कि मैं हिंदू हूं। अभी मैंने सुना है कि जयप्रकाश ने यहां अहमदाबाद में कहा कि मैं हिंदू हूं और हिंदू होने का मुझे गौरव है। खतरनाक लोग हैं ये। क्योंकि जो यह कहता है कि हिंदू धर्म श्रेष्ठ है, जो यह कहता है कि जैन धर्म श्रेष्ठ है, जो यह कहता है कि मैं हिंदू होने की वजह से गौरवान्वित हूं, यह उपद्रव के बीज बो रहा है--चाहे इसे पता हो और चाहे पता न हो। क्योंकि जो यह कह रहा है कि हिंदू धर्म श्रेष्ठ है वह हिंदू के अहंकार को फुसला रहा है, वह हिंदू के अहंकार को रस दे रहा है और हिंदू के अहंकार को कह रहा है कि हां, हम श्रेष्ठ हैं। और जो यह कह रहा है कि इस्लाम श्रेष्ठ है वह इस्लाम के अहंकार को फुसला रहा है। और जो जैन धर्म को श्रेष्ठ कह रहा है वह भी फुसला रहा है। और जो कह रहा है कि मैं गौरवान्वित हूं हिंदू होकर, मुझे गौरव है कि मैं हिंदू हूं, वह दूसरे लोगों को भी हिंदू होने के अभिमान से भर रहा है। और जहां हिंदू का अहंकार है, जहां मुसलमान का अहंकार है, वहां शांति नहीं हो सकती। वहां कोई शांति संभव नहीं है।

इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जब हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं तो आमतौर से हम यह समझ कर कि गुंडे दंगे कर रहे हैं, गुंडों को गालियां दे लेते हैं और घरों में बैठ जाते हैं। मैं आपसे कहता हूं, बहुत समय हो गया है, गुंडों को अब ज्यादा गालियां मत दें। अब पकड़ना हो तो महात्माओं को पकड़ें, गुंडों को पकड़ने से कुछ भी नहीं हो सकता। गुंडे समस्या नहीं हैं, महात्मा समस्या हैं। लेकिन महात्मा अमन कमेटी बनाते हैं, शांति की व्यवस्था करते हैं, प्रवचन देते हैं, लोगों को समझाते हैं, लड़ो मत। तो महात्मा ऐसा समझ में आता है, वह तो बेचारा समझा रहा है, लड़ो मत। लड़ता तो गुंडा है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, बहुत पुरानी हो गई है यह बात। यह बात सही नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि महात्माओं की कोई कमी नहीं है, शायद गुंडों से ज्यादा ही होंगे। लेकिन कोई कमी नहीं होती युद्ध-संघर्ष में, वैमनस्य में, ईर्ष्या में, घृणा में। नहीं, कहीं कुछ भूल हो रही है। गुंडे को हम व्यर्थ ही पकड़ रहे हैं। वह महात्मा की तरकीब है। वह हमें सब गुंडों की तरफ इशारा कर देता है कि गुंडों ने गड़बड़ की। लेकिन महात्मा पकड़ में नहीं आता। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि महात्मा जड़ में है। क्योंकि महात्मा कह रहा है कि मैं हिंदू होकर गौरवान्वित हूं। वह हिंदू के अहंकार को मजबूत कर रहा है। वह महात्मा कह रहा है कि मैं हिंदू हूं, वह महात्मा कह रहा है कि मैं मुसलमान हूं। तब फिर उपद्रव जारी है।

खान अब्दुल गफ्फार खान यहां आए, सारे मुल्क में गए। लेकिन वे पक्के मुसलमान हैं। और मैं कहना चाहता हूं, पक्का मुसलमान होना खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि आदमी को आदमी होने दो, मुसलमान और हिंदू मत बनाओ। कृपा करो, अब आदमी-आदमी ही हो जाए तो ही दंगे बंद हो सकते हैं, अन्यथा दंगे बंद नहीं हो सकते। आदमी पर लगाया गया कोई भी लेबल दंगे में सहयोगी बनता है। लेबल लड़वाते हैं। लेकिन एक पक्का मुसलमान है, एक पक्का हिंदू है और हम पक्के हिंदू और मुसलमान कभी मिल नहीं पाते। वह जो मुसलमान होना है वह हिंदू होने से कैसे मिल सकता है? वह जो जैन होना है वह मुसलमान होने से कैसे मेल खाएगा? हमारे बीच अदृश्य दीवालें खड़ी हो जाती हैं।

नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, हिंदू-मुस्लिम एक हैं, अब इस नासमझी में पड़ने की जरूरत नहीं है। पचास साल हमने काफी भुगतान किया उस नासमझी का। अब हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई हैं, इसको भी दोहराने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि भाई-भाइयों के कारण हमने बहुत नुकसान सह लिया। बल्कि सच तो यह है कि जितना हमने जोर दिया कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं, उसी जोर ने हिंदुस्तान, पाकिस्तान को बंटवाने का आधार रखा। क्योंकि दो भाई जब पक्के भाई हों और लड़ें और लड़ने के बाद कोई उपाय न हो, तो बंटवारे के सिवाय कोई लॉजिकल कनक्लूजन नहीं रह जाता।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, जिन्होंने समझाया हिंदुस्तान को कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं उन्होंने बंटवारे की नींव रख दी, क्योंकि अगर भाई आखिर में न मिल सकें तो फिर उपाय एक ही है कि बांट लो। कभी कोई देश बंटा नहीं था इस तरह, क्योंकि कभी किसी देश में भाई-भाई होने की पचास साल तक नासमझी नहीं दोहराई गई। हिंदू-मुसलमान का भाई-भाई होना हिंदुस्तान, पाकिस्तान का आधार बना, क्योंकि जब भाई आखिर में लड़ते हैं, और ध्यान रहे, भाइयों से ज्यादा खतरनाक ढंग से कोई भी नहीं लड़ सकता। जब दो भाई लड़ते हैं तो बहुत खतरनाक ढंग से लड़ते हैं। भाइयों से खतरनाक कोई भी नहीं लड़ सकता। इसलिए हिंदू-मुसलमान को भाई-भाई बनाने में खतरा है कि वे खतरनाक ढंग से लड़ भी सकते हैं। और जब दो भाई लड़ते हैं तो आखिर में बंटवारा हो जाता है, और क्या उपाय है? हिंदुस्तान बंटा। जिन्होंने भाई-भाई कह कर समझाया उन्होंने देश को बंटवाया। अब आगे यह कहने की जरूरत नहीं है। असल में यह जरूरत ही क्यों पड़ती है कि हिंदू

मुसलमान भाई-भाई हैं! यह जरूरत इसलिए पड़ती है कि पहले हम स्वीकार कर लेते हैं कि एक हिंदू है और एक मुसलमान है।

नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, ये उपद्रव बंद न होंगे। यह सांप्रदायिक जहर समाप्त न होगा। इस देश के सामने बड़े से बड़ा जीता सवाल सांप्रदायिक जहर का है, सांप्रदायिकता का है, यह समाप्त न होगा। यह समाप्त एक ही तरह से होगा कि हम लेबल अलग कर दें। और जो लोग बुद्धिमान हैं, वे कह दें कि हम सिर्फ आदमी हैं; अब हमें हिंदू और मुसलमान होने से कोई वास्ता न रहा। अभी आपने यहां सब कुछ देखा, लेकिन कितनों के मन में यह खयाल आया कि अब हम हिंदू और मुसलमान होना बंद कर दें। नहीं, किसी को खयाल नहीं आया। वह खयाल नहीं आता हमें। हमें यही खयाल आता है कि गलत हिंदू यह काम कर रहे हैं। गलत मुसलमान यह काम कर रहे हैं। हमें यह खयाल ही नहीं आता कि मुसलमान होने, हिंदू होने के भीतर ये बीज छिपे हैं इसलिए यह होता रहेगा। अगर आपको पता न हो कि आप हिंदू हैं या मुसलमान हैं, तो आप किससे लड़ने जा सकते हैं?

मैं अभी एक ट्रेन में सवार हुआ। कुछ मित्र छोड़ने आए थे। उसी बगल के मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन थे, उन्होंने सोचा, कोई महात्मा होंगे। जैसे ही मैं डिब्बे के भीतर गया, वे पैर पड़े और कहा, महात्मा जी, आपसे सत्संग करना चाहता हूं। मैंने कहाः पहली तो बात यह कि मैं कोई महात्मा नहीं हूं। महात्माओं ने इतना नुकसान पहुंचाया है कि अब कोई भला आदमी महात्मा नहीं हो सकता है। तो आपने गलती से पैर पड़ लिए। अगर किसी तरकीब से वापस ले सकते हों तो वापस ले लें। उन्होंने कहाः क्या आप महात्मा नहीं हैं? कम से कम आप हिंदू तो हैं? मैंने कहा कि हिंदू भी मैं नहीं हूं, मैं सिर्फ आदमी हूं। उन्होंने कहाः क्या मतलब आपका? आप हिंदू नहीं हैं? वे इतने बेचैन हो गए, क्योंकि पता नहीं, किसके पैर छू लिए! मुसलमान हो, ईसाई हो, पता नहीं कौन हो! अब लेकिन पैर छू लिए तो वापस लौटाने का उपाय नहीं है! अब क्या करेंगे? मैंने कहाः कोई तरह वापस ले सकते हों तो ले लें। हाथ धो सकते हों तो धो लें, साबुन मैं दिए देता हूं। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, यह बात नहीं, लेकिन आप कौन हैं? मुसलमान हैं, ईसाई हैं, कौन हैं? मैंने कहाः अगर मैं कोई न होऊं तो क्या मुझे होने का हक नहीं है? नहीं, उन्होंने कहाः हक की कोई बात नहीं है। मैंने कहाः बैठिए। आप कहते थे, सत्संग करेंगे, सत्संग हो। उन्होंने कहाः नहीं, मैं सुबह मिलूंगा। मैंने कहाः आप बैठें। पर वे इतने बेचैन हो गए कि उस आदमी के साथ कैसे बैठें जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है! हम उस आदमी से संबंध कैसे जोड़ें, दोस्ती कैसे बनाएं, दुश्मनी कैसे बनाएं? अगर मैं हिंदू होता तो दोस्ती बन जाती। अगर मैं मुसलमान होता तो दुश्मनी बन जाती। लेकिन अगर मैं निपट आदमी हूं, तो संबंध कैसे बनाएं! दो आदमी के बीच संबंध नहीं हो सकता? नहीं; हिंदू हिंदू के बीच संबंध हो सकता है, मुसलमान मुसलमान के बीच हो सकता है। और यह भी वहीं, जहां कि हिंदू-मुसलमान हैं।

जब यहां अहमदाबाद में दंगा चलता था तो मैं कश्मीर में था, पहलगाम में था। पहलगाम तो मुसलमानों की बस्ती है। हिंदू तो एकाध-दो घर होंगे। जो आदमी मेरा खाना बनाता था उससे मैंने पूछा कि तू मुसलमान है न? उसने कहाः मैं मुसलमान! नहीं। वह जो आपके कपड़े धोता है, वह मुसलमान है। मैं तो सुन्नी हूं। मैंने कहाः यह बड़ा मुश्किल सवाल है। तू सुन्नी है, मुसलमान नहीं है? उसने कहा कि नहीं, शिया मुसलमान होते हैं, हम सुन्नी हैं। उस गांव में शिया और सुन्नियों में झगड़ा है, तो दोनों एक ही लेबल लगाने को तैयार नहीं हैं। झगड़ा है शिया-सुन्नी में, तो दोनों कैसे मुसलमान हो सकते हैं? सुन्नी सुन्नी है, शिया शिया है। दोनों के बीच झगड़ा है, तनाव है। शिया-सुन्नी के बीच झगड़ा है, श्वेतांबर-दिगंबर के बीच झगड़ा है, ब्राह्मण-शूद्र के बीच झगड़ा है। फिर ब्राह्मण और ब्राह्मण के बीच भी फिरके हैं और उनके बीच झगड़ा है।

क्या हम लेबलों से कभी मुक्त न हो सकेंगे? आदमी कभी आदमी न हो सकेगा? समस्या यह है कि आदमी आदमी होकर ही ठीक हो सकता है। और हम जो समाधान खोजते हैं वे कुछ ऐसे खोजते हैं कि उनसे आदमी कभी आदमी नहीं हो पाता है। वह हिंदू हो जाता है, मुसलमान हो जाता है, ईसाई हो जाता है। और झगड़े के बीज आरोपित कर दिए जाते हैं। इस देश को अगर भविष्य की तरफ उन्मुख होना हो तो अतीत से दी गई इन बीमारियों से छुटकारा पाना होगा। आदमी होगा भविष्य में, यह निर्णय लेना होगा।

और जो बाप अपने बेटे को हिंदू बना रहा है, वह दुश्मन है अपने बेटे का। क्योंकि वह अपने बेटे को किसी की छाती में छुरा भोंकने को तैयार करवा रहा है। और जो बाप अपने बेटे को मुसलमान बना रहा है, वह भी खतरनाक बाप है। वह या तो अपने बेटे की छाती में छुरा भोंकवाएगा या अपने बेटे से किसी की छाती में छुरा भोंकवाएगा। लेकिन अब अगर बाप थोड़े समझदार हों तो अपने बेटे को सिर्फ आदमी बनाना चाहिए। पचास साल बाद इस देश में आदमी हों। हिंदू-मुसलमान खोजे से न मिलें, यह निर्णय हमें लेना पड़ेगा। अन्यथा हम सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं हो सकते। न खान अब्दुल गफ्फार खान मुक्त कर सकते हैं, न महात्मा गांधी मुक्त कर सकते हैं, क्योंकि बुनियादी जड़ की बीमारी को वे स्वीकार करते हैं। एक हिंदू है--एक पक्का हिंदू, एक पक्के मुसलमान हैं। वे बुनियादी जड़ को इनकार नहीं करते। वे यह नहीं कहते हैं कि मस्जिद और मंदिर, हिंदू और मुसलमान बेहूदगियां हैं, एब्सर्डिटीज हैं। भगवान का कोई मंदिर हो सकता है कि कोई मस्जिद हो सकती है?

भगवान अगर है तो इस पूरे जगत में है और हर जगह मंदिर है और हर जगह मस्जिद है। और जिसे प्रार्थना करना आता है वह किसी वृक्ष के नीचे या किसी नदी के तट पर, अपने घर की छत पर भी मंदिर बना ले सकता है। कहीं अलग मंदिरों की अब जरूरत नहीं है। अलग मंदिर बहुत महंगे पड़ गए हैं, बहुत महंगा सौदा सिद्ध हुआ है। अब नहीं मंदिर चाहिए, अब नहीं भगवान की मूर्तियां चाहिए, अब नहीं मस्जिद चाहिए, अब इनसे छुटकारा चाहिए। अब सिर्फ आदमी चाहिए। और ऐसा आदमी अगर हम पैदा नहीं कर सकते हैं तो हम अपनी समस्याओं का हल न खोज पाएंगे। हम रोते रहेंगे, समस्याएं हमारी जान खाती रहेंगी। आज यहां फूटेगा, कल जहर वहां फूटेगा, परसों वहां फूटेगा। बंबई, अहमदाबाद में जब जहर फूटेगा तो अहमदाबाद के लोगों को कहेगा, कैसे लोग हैं! और जब जबलपुर में जहर फूटेगा तो अहमदाबाद के लोग कहेंगे, कैसे लोग हैं! और जब दिल्ली में फूटेगा तो जबलपुर के लोग कहेंगे, कैसे लोग हैं! लेकिन कोई यह न सोचेगा कि हम सब ऐसे ही लोग हैं, हम सबमें कोई फर्क नहीं है। क्योंकि हम भी हिंदू हैं, हम भी मुसलमान हैं। देर-अबेर की बात है, जहर कहीं भी फूट सकता है, लेकिन हम सब बीमार हैं।

आदमी को स्वस्थ करना है तो आदमी, सिर्फ आदमी होना काफी है। असल में हिंदू-मुसलमान होना बड़ी पुरानी बातें हो गई हैं। एक दुनिया थी जब दुनिया खंड-खंडों में विभाजित थी। न हिंदुस्तान के आदमी को पता था बाहर का, न बाहर के आदमी को पता था हिंदुस्तान का। लोकल सब बंटवारा था। सारी दुनिया छोटे-छोटे खंडों में बंटी थी।

और कनफ्यूशियस की एक किताब में लिखा है कि मेरे पूर्वज कहते थे कि गांव के पास नदी बहती थी। नदी के उस पार रात को कुत्ते भौंकते थे तो हमें आवाज सुनाई पड़ती थी लेकिन हमें यह पता नहीं था कि नदी के पार कौन रहता है? क्योंकि नदी बड़ी थी और नाव ईजाद न हुई थी। नदी के पार कोई रहता है, कोई गांव है, कभी-कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज रात के सन्नाटे में सुनाई पड़ती है लेकिन नाव न थी। वह गांव अपनी उसकी दुनिया थी, इस गांव की अपनी दुनिया थी। एक-एक गांव की अपनी दुनिया थी, एक-एक देश की अपनी

दुनिया थी। सारी मनुष्यता जुड़ी न थी। उस खंडित दुनिया में हमने जो विचार पैदा किए थे वे आज के काम के नहीं हैं।

आज सारी दुनिया एक गांव हो गई है, एक युनिवर्सल विलेज हो गई है। जितनी देर में हम एक गांव से दूसरे गांव पहुंचते थे, आज उतनी देर में हम अहमदाबाद से लंदन पहुंच सकते हैं। दुनिया एक छोटा गांव हो गई है। उस दुनिया की धारणाएं, जब दुनिया खंडित थी, हम अगर अभी भी पकड़ कर चलते हैं तो हम इस दुनिया में रहने के योग्य न रह जाएंगे। वे हमें छोड़ देनी पड़ेंगी। यह ऐसा ही है जैसा कि कार तो ईजाद हो गई है, हवाई जहाज ईजाद हो गया लेकिन एक आदमी अपनी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में बैठ जाए। वह कहे कि हम अपनी बैलगाड़ी नहीं छोड़ सकते हैं। क्योंकि बैलगाड़ी में हमारे पूर्वज चलते थे। बैलगाड़ी ने बड़ी कृपा की है। हम बैलगाड़ी नहीं छोड़ सकते, हम तो हवाई जहाज में इसको लेकर ही चलेंगे।

उस आदमी को हम पागल कहेंगे, जो आदमी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में सवार होने की कोशिश कर रहा है। लेकिन हम सब पिछली सदियों को लेकर बीसवीं सदी में जीने की कोशिश कर रहे हैं। उन दोनों बातों में बहुत भेद नहीं है। पिछली सदियों को विदा हो जाना चाहिए। चौदह सौ साल पहले इस्लाम पैदा हुआ था। वह चौदह सौ साल पहले अरब की हालतों में उसका कोई अर्थ कोई संदर्भ रहा होगा; कोई संगति, कोई रिलेवेंस रही होगी। आज उसकी कोई रिलेवेंस नहीं है।

हिंदू धर्म पांच हजार साल पहले पैदा हुआ था। पांच हजार साल की पुरानी दुनिया में उसका कोई अर्थ रहा होगा। जब बिजली चमकती होगी तो डर लगता होगा और इंद्र की पूजा की गई होगी। अर्थात मन को राहत मिली थी, रात हम निश्चिंत सो सके थे कि इंद्र को समझा दिया है, नारियल भी फोड़ दिया है। रात कम से कम हमारा घर सुरक्षित रहेगा। लेकिन आज कोई रिलेवेंस नहीं है। लेकिन आज भी बीसवीं सदी में यज्ञ किया जा रहा है, इंद्र की पूजा की जा रही है, पानी बरसे, इसके लिए इंद्र से प्रार्थना की जा रही है, यह बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में चढ़ने की कोशिश है।

नहीं, हर युग अपना विचार पैदा करता है। फिर युग चला जाता है और विचार अटक कर रह जाता है। और विचार को हम दूसरे युग में ले जाते हैं। तब वह विचार बोझिल हो जाता है, लेकिन पहले यह बोझिल न हुआ था क्योंकि नये विचार पैदा ही नहीं हो रहे थे। लेकिन इधर डेढ़ सौ वर्षों में मनुष्य की चेतना क्रांति से गुजर गई है। एक बहुत बड़ा तूफान आया, सब विचार बदल गए, नई दिशाएं टूटीं, नये खयाल पैदा हुए, नये आविष्कार हुए। उन्होंने सब पुरानी स्थिति डांवाडोल कर दी। पुराना सब जमा हुआ बिखर गया। सब उखड़ गया। एक दुनिया थी जब हम सोचते थे पृथ्वी केंद्र है और सूरज चक्कर लगाता है। वैसे दिखता है सूरज चक्कर लगाता हुआ। लेकिन सब दिखा हुआ सच नहीं होता। सूरज दिखता है हम सबको कि चक्कर लगाता है। एक दुनिया थी, जब स्वाभाविक किसी ने सोचा होगा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। उस दुनिया के लिए यह बात गलत न रही होगी। लेकिन आज, आज अगर कोई यह कहेगा तो मुश्किल हो जाएगी। आज हम जानते हैं कि पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है। लेकिन जो हमने विचार पैदा किए थे पृथ्वी को केंद्र पर मान कर वे सारे के सारे विचार वही के वही हैं और अब सब स्थिति बदल गई है। अब पृथ्वी सूरज का चक्कर लगा रही है।

मनुष्य को एक भारी अहंकार था। पुराने सारे धर्म कहते हैं, आदमी को विनम्र होना चाहिए लेकिन किसी धर्म ने भी आदमी को विनम्रता नहीं सिखाई। आदमी को धर्म ने भारी अहंकार सिखाया है। कोई कहता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। कोई कहता है, हम ईश्वर के बेटे हैं। कोई कहता है, परमात्मा ने आदमी को सृजा अपनी ही शक्ल में। अब आदमी की शक्ल देख कर अगर परमात्मा का पता लगाना हो, तो ऐसा परमात्मा न ही मिले तो

अच्छा। क्योंकि मिले तो जेब काट सकता है, छुरा मार सकता है आदमी की शक्ल में। पुराने आदमी ने ऐसा सोचा था कि भगवान ने कोई स्पेशल, कोई विशेष आदमी को पैदा किया है। पृथ्वी केंद्र थी, आदमी केंद्र था, चांद-तारे सब आदमी के आस-पास, इर्द-गिर्द घूम रहे थे।

चांद इसलिए था कि आदमी को रात में रोशनी हो और सूरज इसलिए था कि सुबह उठ कर आदमी को खेत पर काम में जाने में रोशनी करे। सब आदमी के चाकर थे। और भगवान आदमी को व्यवस्था देने के लिए था। इसलिए आदमी छोटी-छोटी बात के लिए उसके पास जा रहा था--पानी गिराओ, धूप कम करो, या बादल लाओ या न लाओ, या फसल ठीक हो, या दुश्मन की फसल न हो पाए।

धर्मग्रंथों में ये भी प्रार्थनाएं हैं कि दुश्मन की गाय दूध देना बंद कर दे। धर्मग्रंथ थे कि दुश्मन के खेत में फसल न हो, कि ओले गिरें तो दुश्मन के खेत में गिरें, मेरे खेत में न गिरें। हे भगवान, ऐसी व्यवस्था कर देना। भगवान से भी एक तरह के नौकर का ही काम लिया जा रहा था--आदमी के नौकर का। आदमी था सेंटर में, सब बदल गया लेकिन।

पीछे बर्नार्ड शॉ अमरीका में था। एक युनिवर्सिटी में बोलते हुए उसने मजाक में यह बात कही कि मैं यह सिद्धांत मानने को राजी नहीं हूं कि सूरज का चक्कर पृथ्वी लगाती है। मैं तो पुराना सिद्धांत ही मानता हूं कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। एक आदमी ने पूछाः आप कह क्या रहे हैं? भूल तो नहीं गए हैं? सूरज, और पृथ्वी का चक्कर लगाता, आप कह रहे हैं? कारण बताएंगे? बर्नार्ड शॉ ने कहाः बिना कारण मैं कुछ भी नहीं कहता। बड़े से बड़ा कारण यह है कि बर्नार्ड शॉ जिस पृथ्वी पर रहता है वह पृथ्वी किसी का चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज ही चक्कर लगाता होगा। मैं यहां रहता हूं।

आदमी पृथ्वी पर रहता था। उसने पृथ्वी को सेंटर बना लिया था। अब हम जानते हैं कि पृथ्वी बहुत छोटी से छोटी चीज है। सूरज सात हजार गुना बड़ा है इस पृथ्वी से, और सूरज बहुत छोटा सूरज है, उससे करोड़, अरब गुने सूरज हैं। सूरज बहुत छोटा सूरज है और पृथ्वी का तो कोई पता ही नहीं है। अगर इस पूरे विस्तार में हम खोज करने निकलें तो पृथ्वी का कोई हिसाब नहीं है। वह कहीं नहीं आती है। उस पृथ्वी पर आदमी है, लेकिन उसने अपने को सदा केंद्र माना था। केंद्र मान कर उसने एक दुनिया विकसित की थी--मंदिर और मस्जिद और भगवान और गीता और कुरान, और दर्शन और फिलासफी की। वह सब गड़बड़ा गई।

अब आदमी केंद्र पर नहीं है। फिर पहले तो पृथ्वी चक्कर लगाने लगी, आदमी का पहला केंद्र टूट गया। फिर डार्विन ने कहा कि यह आदमी की सारी आदतों को देख कर, खोज-बीन करके ऐसा लगता है कि यह थोड़ा सा पूंछ झड़ गया बंदर है। कहां भगवान की इमेज में हम थे और कहां बंदर से संबंध जुड़ा! बहुत मुश्किल हो गई, बहुत बेचैनी हुई, बहुत कठिनाई हुई, लेकिन डार्विन ने बड़े गहरे प्रमाण खोजे थे। और उसे गलत नहीं कहा जा सका। भगवान का बेटा अचानक बंदर का बेटा सिद्ध हुआ। तब बहुत कठिनाई हो गई। लाखों साल हो गए हैं बंदर को आदमी बनने की प्रक्रिया में। बहुत कुछ बदलाहट हुई है लेकिन बहुत गहरे में बंदर अब भी मौजूद है।

मैं एक अजायबघर में गया था। वहां काफी बंदर एक कठघरे में बंद हैं। मैं उस अजायबघर के एक क्यूरेटर को पूछने लगा कि जब तुम किसी नये बंदर को लाते हो... क्योंकि उस दिन एक नया बंदर लाया गया था, उस कठघरे में। उस नये बंदर को बाकी बंदर बहुत परेशान कर रहे थे। पुराने बंदर उसको डरवा रहे थे। तो उसने कहा कि यह हमेशा होता है। जब भी नये बंदर को लाते हैं तो रस्साकशी होती है। जो पुराना बंदरों का नेता होता है वह नये बंदर को डरवाता है। अगर नया बंदर डर जाए, दबा दिया जाए तो वह सब-आर्डिनेरी हैसियत का हो जाता है, नंबर दो। और अगर वह न डरे और पुराने वाले नेता को डरा दे तो वह नंबर एक हैसियत का

हो जाता है। मैंने कहाः बहुत बढ़िया। उसने कहाः आप दिल्ली जाते होंगे, दिल्ली में भी यही होता है। एक बंदर दूसरे बंदर को डरा रहा है। सब आर्डिनेरी हैसियत करने की कोशिश चलती है।

वह डार्विन ठीक कहता था। और आज के हिंदुस्तान के नेताओं की तो शक्लें भी डार्विन को पता नहीं थीं। अगर पता होतीं तो बड़ी मुश्किल होती। वह इसको भी एक प्रमाण मानता कि आदमी जरूर बंदर से पैदा हुआ है। असल में जब जिंदगी कुरूप हो जाती है तो भीतर चेहरा भी कुरूप हो जाता है। हिंदुस्तान के नेतृत्व से सौंदर्य चला गया नेहरू के मरने के साथ। भीतर सब कुरूपता है, सब गंदगी है, चौबीस घंटे, तो चेहरे भी कुरूप हो जाते हैं। उनका भी सौंदर्य खो जाता है। आज हिंदुस्तान के नेताओं को लाइन लगा कर खड़ा किया जाए तो वे किसी भी कारागृह के अपराधी, कैदी मालूम हो सकते हैं। सौंदर्य खो गया, गरिमा खो गई। डार्विन को लेकिन इसका कुछ पता नहीं था। उसने तो इनके बिना जाने यह किया था। इनका कोई कसूर नहीं था, इनका कोई हाथ नहीं था। लेकिन डार्विन ने यह कहा कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। और बड़ी खोज की, और बात सच है।

वैसे, भगवान से पैदा होना और बंदर से पैदा होने में, बंदर से पैदा होना ही ज्यादा गौरवपूर्ण है। क्यों? क्योंकि भगवान से पैदा होने का मतलब होता है पतन, फाल। बंदर से विकसित होने का मतलब होता है विकास, उन्नति। भगवान से पैदा होने का मतलब होता है पतन। बंदर से पैदा होने का मतलब होता है विकास। पुरानी दुनिया पतन की छाया में जी रही थी। उसने जितने समाधान खोजे थे, वे सब पतन की छाया में खोजे थे। ओरिजिनल सिन था कि आदमी भगवान से बिछुड़ गया। ईदन के बगीचे से बाहर निकाल दिया गया। पतित था आदमी। डार्विन के बाद आदमी विकास की धारा पर खड़ा हुआ। इसलिए पुराना आदमी रोज पतित हो रहा था। हमने भी जो विचार किया था वह पतन का है। हमारे अच्छे युग पहले हो चुके, गोल्डन एज पहले हो चुकी। सतयुग, द्वापर, त्रेता, सब हो चुके। पीछे कलयुग। रोज हम पतित हो रहे हैं। श्रेष्ठतम युग पहले, फिर पतन... फिर पतन... फिर पतन, कलियुग आखिरी पतन की स्थिति। हमारी भी चिंतन की धारा यही थी कि श्रेष्ठ पहले हो गया, निकृष्ट पीछे आ रहा है। विकास की कोई धारणा न थी।

दुनिया में ही न थी। इवोल्यूशन की कोई धारणा न थी, पतन की ही धारणा थी।

पतन की धारणा के नीचे जो भी सिद्धांत हमने खोजे थे, वे आज की समस्याओं का समाधान नहीं है। क्योंकि आज हम विकास की धारणा के अंतर्गत जी रहे हैं। आज सब कुछ विकास के अंतर्गत है। आज आदमी विकासशील है। इसलिए पुराना समाज स्टेटिक था, ठहरा हुआ था। ज्यादा से ज्यादा पतन रुक जाए तो काफी था। आज का समाज डाइनेमिक होगा, गतिमान होगा। इतना काफी नहीं है कि पतन न हो, जरूरी है कि विकास हो। विकास हो मतलब, स्वर्णयुग आगे रखना होगा भविष्य में। अब तक के सब स्वर्ण-युग पीछे थे। राम-राज्य हो चुका वही। जो हो चुका था वही राम-राज्य है, लेकिन स्वर्ण-युग आगे है। यह हमें बदलना पड़ेगा। हमें पूरा पर्सपेक्टिव--चिंतन की पूरी धारा बदलनी पड़ेगी।

फिर आया फ्रायड। एक हमला कोपरनिकस ने किया, दूसरा हमला डार्विन ने किया, तीसरा हमला फ्रायड ने किया। उसने कहा कि जिन चीजों की तुम निन्दा कर रहे हो वह आदमी उनसे भरा हुआ है। और जिन चीजों की तुम प्रशंसा कर रहे हो वे सिवाय सपनों के, कहानियों के और कुछ भी नहीं हैं। और जब आदमी के भीतर खोज-बीन की गई तो फ्रायड को सही पाया गया। फ्रायड सही है।

आदमी उन सब चीजों से भरा है, जिन्हें हम इन्कार कर रहे हैं। हमारे इनकार करने से कुछ फर्क नहीं पड़ता है। एक आदमी गीता पढ़ रहा है, एक आदमी कुरान पढ़ रहा है। हम सोच भी नहीं सकते कि भोला-भाला

आदमी एक दीया जला कर, घी का दीया जला कर कुरान और गीता पढ़ रहा है, यह किसी की छाती में छुरा भोंक सकता है। इसके चेहरे को देख कर खयाल ही नहीं आता। लेकिन फ्रायड कहता है कि थोड़ा पीछे खोजो, हो सकता है, छुरा भोंकने से बचने के लिए ही कुरान और गीता पढ़ रहा हो कि किसी तरह मन को भुला लें। राम-राम, राम-राम जप रहा है एक आदमी। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि राम का चिंतन कर रहा है। हो सकता है, भीतर किसी चिंतन को दबाने लिए राम-राम, राम-राम जप रहा हो कि भीतर कुछ दब जाए जो राम से बिल्कुल उलटा है। नदी में लोग ठंड में स्नान करते हैं तो एकदम हरि-हरि, राम-राम, राम-राम करने लगते हैं। इस भूल में मत पड़ जाना कि राम से कुछ संबंध है। वह जो ठंड लग रही है, वह ठंड भूल जाए। माइंड आकुपाइड हो जाए राम-राम में तो नीचे जो ठंड लग रही है वह भूल जाए।

फ्रायड ने पहली दफा चेताया कि भीतर आदमी कुछ और है। उसे भूलने की कोशिश कर रहा है। भजन-कीर्तन कर रहा है और भीतर गालियां देना चाहता है। ऊपर से प्रेम की बातें कर रहा है, भीतर घृणा के सागर भरे हैं। ऊपर से अमृत की खोज कर रहा है, भीतर जहर खुद पैदा कर रहा है।

आदमी की सचाई पहली दफा खोल कर रखी गई। हम डरते थे आदमी को नंगा देखने में कि वह आदमी नंगा कैसा है। हमने उसे कपड़े पहना दिए थे अच्छे-अच्छे और कपड़ों में ही देखते रहे थे। इधर डेढ़ सौ वर्षों में सब बदल गया। आदमी बहुत और रूप का दिखाई पड़ा है, जैसा हमने उसे कभी न सोचा था--भीतर खोजने से। जितने हम उसके भीतर गहरे गए हैं उतना हमें पता चला है कि आदमी बहुत अदभुत जाल है। उसके भीतर बड़ी गहरी जड़ें हैं और बड़ी खतरनाक हैं। लेकिन उनको दबाने से कोई छुटकारा नहीं है। उनको समझने से छुटकारा हो भी सकता है। पुरानी सारी संस्कृति दबाने वाली संस्कृति थी। आज की अधिकतम समस्याएं, जिन्हें हम आज बर्निंग प्रॉब्लम्स कहते हैं, जिन्हें हम जिंदा जलते हुए प्रश्न कहते हैं, वे पुरानी सभ्यता के सप्रेशन और दमन से पैदा हुए हैं। आज जलते हुए हैं, लेकिन उनकी जलन और उनकी आग ऐसे मार्गों से भी निकल जाती है जिनसे उनका कोई संबंध नहीं है।

मैं दफ्तर में हूं और मेरे मालिक से झगड़ा हो गया, तो मालिक पर मैं क्रोध नहीं करता हूं, लेकिन जाकर अपनी पत्नी पर टूट पड़ता हूं। और पत्नी की समझ के बाहर होता है। उसने बेचारी ने कुछ बिगाड़ा भी नहीं। दिन भर मेरे घर में मेरे बच्चों की फिकर करे, मेरे बर्तन साफ करे, मेरे कपड़े धोए और सांझ को मैं पहुंचूं कि उसकी गर्दन पकड़ लूं और उसे कुछ समझ में न आए कि क्या मामला हो गया है। लेकिन वह भी मुझ पर नहीं टूट सकती है क्योंकि पति परमात्मा है। ऐसा पतियों ने ही उसे समझाया हुआ है! और पति कैसा भी हो, उसको तो सती-सावित्री होना ही है। वह भी समझाया हुआ है। तो वह मुझे सह जाती है। लेकिन बेटे की प्रतीक्षा करती है स्कूल से आते कि बेटा फंस जाए आकर तो उसकी गर्दन पकड़ ले। बेटा चला आ रहा है, उसे पता भी नहीं है। बस्ते को झुलाते हुए, गीत गाते हुए, उसे पता ही नहीं कि मां तैयार है, पिता ने मां को तैयार कर रखा है। वह तैयार है, वह उस पर टूटेगी। वह आते से टूट पड़ने वाली है। कपड़े खराब हो गए हैं, गंदे लड़कों के साथ खेला है, और हजार कसूर हैं।

जिंदगी में कसूर जब खोजने हों तो मिल ही जाते हैं, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कल भी वह इन्हीं बच्चों के साथ खेला था, कल भी कपड़े इतने ही गंदे हो गए थे। वह बच्चा कैसा, जिसके कपड़े गंदे होकर घर न आएं! वह कोई बूढ़ा है? बूढ़े अपने कपड़े बचा कर आते हैं इसलिए और कुछ नहीं बचा पाते हैं, सिर्फ कपड़े ही बचा पाते हैं। वह बच्चा है, अभी कपड़े की फिकर कहां है। अभी कपड़े कहां बाधा डालते हैं जीने में उसके! अभी कपड़े अर्थहीन हैं। अभी कपड़ों का कोई मूल्य नहीं है। वह कल भी कपड़े बिगाड़ कर आया था, लेकिन कल नहीं पकड़ा

गया था, क्योंकि कल पति ने पत्नी को तैयार नहीं किया था। आज पत्नी तैयार है। आज वह टूट पड़ती है। लेकिन लड़का क्या करे, वह चौकन्ना खड़ा हो जाता है। उसने कोई कसूर तो किया नहीं लेकिन वह क्या करे? वह एकांत में जाकर अपनी गुड़िया की टांगें तोड़ देता है, गर्दन मरोड़ देता है।

हमारे दबे हुए विकार नये-नये मार्गों से--बहुत इनोसेंट, बहुत निर्दोष मार्गों से निकलना शुरू हो जाते हैं। मेरी अपनी समझ है कि हिंदुस्तान में आजादी के बाद जो हत्याकांड हुआ, हिंदुस्तान और पाकिस्तान की सीमाओं पर--हिंदुओं का, मुसलमानों का, बच्चों का, औरतों का, आदमियों का कहना चाहिए--जो हत्याकांड हुआ, वह अंग्रेजों के प्रति हमारे दबाए हुए क्रोध का अंतिम फल था जिसको हम नहीं निकल पाए। जिसको हम नहीं निकाल पाए और गांधीजी और उनके साथियों ने उसे नहीं निकलने दिया। उन्होंने अहिंसा, अहिंसा अहिंसा की सारी बातें कीं। वह क्रोध इकट्ठा होता चला गया। वह इकट्ठा होता चला गया फिर कोई उपाय न रहा। इसलिए आजादी के बाद खुल कर निकला। हमने इतनी हत्या, अगर इतना बलिदान, इतनी कुर्बानी आजादी के लिए की होती तो एक चमकदार आजादी हाथ में आती। एक आजादी भी मरी-मराई हाथ में आई और पीछे हमने लाखों लोगों की हत्या भी की। वह बेमानी थी, इररिलेवेंट हो गई। लेकिन वह वैसी थी जैसे बच्चा गुड्डे को मरोड़ डाले और गुड्डे का कोई कसूर न हो।

हिंदू-मुसलमान लड़े। अगर हिंदुस्तान अंग्रेजों से लड़ लेता दिल खोल कर तो हिंदू-मुसलमान कभी न लड़ते। वह क्रोध ही इकट्ठा न हो पाता। अगर हिंदुस्तान अंग्रेजों से लड़ लेता दिल खोल कर तो हिंदू और मुसलमान साथ खड़े हो जाते और एक हो जाते। वह लड़ाई उन्हें इकट्ठा कर गई होती, तोड़ नहीं गई होती। लेकिन वे अंग्रेजों से लड़ न पाए। अंग्रेजों का सारा अपमान पिया। अपनी छाती पर उनके जूते सहे। वह सारा का सारा इकठ्ठा हो गया, वह निकल न सका। उसको हम रोकते रहे, रोकते रहे, रोकते रहे। रुका-रुकाया, फिर कोई उपाय न रहा... ।

आजादी की रात हत्याकांड बन गई। सारे मुल्क में आग फैल गई। वह बड़ी अनहोनी घटना है। लेकिन उसे समझना चाहिए कि वह कैसे घटी, वह कैसे घट गई? वह उस घटने में हिंदू-मुसलमान का उतना हाथ नहीं है। हिंदू-मुसलमान तो बहाना बना। उसके पीछे कारण है डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी, और डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी में इकट्ठा हुआ क्रोध। और उस क्रोध को निकलने का कोई उपाय नहीं। और उस क्रोध का जब सब मामला खत्म हो गया तब वह टूट पड़ा आपस में, और जिसने जिसको कमजोर पाया उसकी गर्दन पकड़ ली। जहां मुसलमान कमजोर था वहां मुसलमान मारा गया, जहां हिंदू कमजोर था वहां हिंदू मारा गया। बच्चे मारे गए, औरतें मारी गईं। लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि वह सवाल सप्रेशन का था। वह दबा हुआ क्रोध और हिंसा थी, जो निकली।

हर दस साल में एक युद्ध की जरूरत पड़ती है दुनिया में। क्योंकि हर दस साल में हम इतनी बेवकूफियां इकट्ठी कर लेते हैं कि जिन्हें प्रकट करने के लिए और कोई उपाय नहीं रह जाता। हर दस साल, पंद्रह साल में एक हिटलर, एक माओ पैदा करना ही पड़ता है, उसके बिना काम नहीं चलता। वह हमारी बहुत नेसेसिटी है, हमारी बहुत जरूरत है। वह हमें बड़ी राहत दे जाता है। दस-पंद्रह साल के लिए फिर हम निश्चिंत जी पाते हैं। फिर इतना ही इकट्ठा कर लेते हैं। क्या आपको पता है कि जब युद्ध होता है तो दुनिया में हत्याएं कम हो जाती हैं, आत्महत्याएं कम हो जाती हैं, चोरियां कम हो जाती हैं, डकैतियां कम हो जाती हैं, खून कम हो जाते हैं। जब युद्ध होता है तब ये क्यों कम हो जाते हैं?

मैं बहुत सोचता था। पहले महायुद्ध में यह हुआ था। तब कुछ समझ में नहीं पड़ा कि क्यों ऐसा हुआ? आखिर जर्मनी में युद्ध हो रहा हो, या यूरोप की जमीन पर युद्ध हो रहा हो, तो चीन में चोरी कम हो जाने का क्या कारण है? लेकिन चीन में चोरी कम हो जाती है, हिंदुस्तान में हत्याएं कम होती हैं। यहां तक मजा है कि लोग कम पागल होते हैं, युद्ध के समय में। पागलों की संख्या नीचे गिर जाती है। इसका फिर दूसरे महायुद्ध में तो बहुत जोर से यह हुआ। तब यह खयाल में आना शुरू हुआ कि जब सामूहिक पागलपन चल रहा हो तो प्राइवेट पागलपन की कोई जरूरत नहीं है। वे उसी में रस ले लेते हैं, उसी में निपटारा कर लेते हैं, उसी में निकास हो जाता है। तो एक-एक आदमी को अलग-अलग पागल होने की जरूरत नहीं। जब सामूहिक हत्या चल रही हो तो हत्या का मजा आ जाता है।

ध्यान रहे, जो हत्या करता है, वही हत्या नहीं करता। जो किनारे खड़े होकर देख कर मजा लेता है वह भी हत्या का भागीदार है। वह भी रस लेता है। उसका भी हाथ है। एक हवा बनाता है जिसमें हत्या हो सकती है। हम हत्या के लिए आतुर हैं। जब किसी की छाती में छुरा भुंकता है और खून के फव्वारे फूटते हैं तो हमारे भीतर कोई तृप्ति होती है। हमारे भीतर कुछ शांत होता है। रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों तो हम हजार काम छोड़ कर साइकिल रोक कर वहीं खड़े हो जाते हैं। ऐसे ऊपर से कहते हैं कि क्यों लड़ते हो? भीतर से भगवान से कहते हैं कहीं छूट ही न जाएं, लड़ाई होनी ही चाहिए। और अगर वे दोनों मान जाएं भीड़ की कि अच्छा नहीं लड़ते, आप कहते हैं तो बात खत्म है, तो सारी भीड़ उदास लौटेगी, समय बेकार गया। कोई मतलब न निकला। लेकिन अगर वे जूझ ही जाएं और खून टपक जाए तो सारी भीड़ एक भीतरी रस और तृप्ति को लेकर लौटेगी।

हम अपने भीतर बहुत इकट्ठा कर रहे हैं। पुरानी सारी संस्कृति सप्रेसिव थी। वह दमन सिखाती थी। उसमें कोई, जिसको विसर्जन कहें वह नहीं सिखाया। इसलिए आदमी के सारे प्रश्न दमन से पैदा हुए प्रश्न हैं। दंगा हिंदू-मुसलमान का होता है लेकिन स्त्री क्यों पकड़ ली जाती है? बड़ी हैरानी की बात है। हिंदू-मुसलमान लड़े, लेकिन स्त्री फौरन फंस जाती है।

अभी मैं एक सभा में बोल रहा था और सभा में कुछ दंगा हो गया, तो दंगा हो गया तो मेरे पास गांव का कमिश्नर भागा हुआ आया और उसने कहा कि एक काम करिए, सबसे पहले स्त्रियों को निकालने का इंतजाम करवाइए। तो मैंने कहाः स्त्रियों से क्या मामला है? जो लोग लड़ रहे हैं उन्हें लड़ने दो। उसने कहाः आपको कुछ पता नहीं। लोग लड़ इसीलिए रहे हैं कि अगर उपद्रव पूरा हो जाए तो स्त्रियां अभी फंस जाएं। अब यह बड़ी हैरानी की बात है। जब झगड़ा होता है तो स्त्रियां एकदम से क्यों उलझ जाती हैं? वह चाहे कलकत्ते में हो, वह चाहे अहमदाबाद में हो, कहीं भी हो, स्त्री क्यों बीच में आ जाती है? असल में सेक्स का इतना सप्रेशन किया है, इतना दमन किया है कि हर आदमी उबल रहा है। मौके की तलाश है। अगर उपद्रव हो जाए तो मौका पूरा है, फिर आइडेंटिटी नहीं रह जाती है कि कौन आदमी क्या कर रहा है? कोई झंझट नहीं है। फिर हम कर ही नहीं रहे, भीड़ कर रही है। इसलिए जो भी हो रहा है, हो सकता है। सब जगह हमारा दमन, हमारी समस्याएं बनता है। इस समय हिंदुस्तान के सामने जो खास समस्याएं हैं, उनको मैं दोहराऊं, और आपसे कहूं कि वे दमन से पैदा हुई हैं।

एक समस्या है हिंदुस्तान के सामने, वह है पद की, धन की पागल दौड़। सिद्धांत-विद्धांत सब बातें हैं। सारी दौड़ पद की और धन की है। सब बातें हैं सिद्धांत--धन की और पद की दौड़ है। लेकिन यह हिंदुस्तान इतना पागल क्यों हो गया है धन और पद के लिए? यह तीन हजार साल से हम धन और पद के खिलाफ हैं। हम कहते हैं कि धनी होना पापी होना है। हम कहते हैं, धन होना बड़ी बुराई है। गरीब होना बड़ी ऊंची बात है।

तीन-चार-हजार साल से गरीब होना हम सिखा रहे हैं। गरीब होने के लिए कोई राजी नहीं है। गरीब होना स्वभाव के विपरीत है। गरीब होना प्रकृति के प्रतिकूल है। कोई आदमी राजी नहीं है। न किसी आदमी को राजी होना चाहिए। हां, सिर्फ इस तरह के लोग राजी हो सकते हैं जिनकी गरीबी पर अमीरी से भी ज्यादा खर्च करना पड़े, ऐसे लोग राजी हो सकते हैं।

चर्चिल ने कहीं कहा है कि गांधी दुनिया के उन गरीब आदमियों में से एक हैं जिनके ऊपर अमीरों से ज्यादा खर्च होता है। और यह ठीक है, यह बात सच है। यह बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन, गांधी की गरीबी बहुत महंगी है। अगर बहुत महंगी गरीबी मिले तो कोई भी गरीब हो सकता है। वह गरीबी बड़े मजे की है। या एक रास्ता और है कि अगर कोई आदमी अमीरी से ऊब जाए तो स्वाद बदलने को गरीब हो जाए। बुद्ध और महावीर ऐसे ही गरीब होते हैं। आज अमरीका में भी हिप्पी और बीटल और बीटनिक इसी तरह गरीब हो रहे हैं। अमीर घरों के लड़के हैं, स्वाद बदलने के लिए बनारस की सड़कों पर भीख मांग रहे हैं।

अभी मैं बनारस था तो दो हिप्पी मुझे मिलने आए। मैंने उनसे कहाः पागल हो गए हो? मैंने सुना है, तुम अमीरों के लड़के हो। उन्होंने कहाः हम अमीरों के लड़के हैं, लेकिन अमीरी से ऊब गए हैं। सब बेस्वाद हो गया है। कोई मतलब नहीं है। सब है, तो मजा ही चला गया। इधर आकर बड़ा आनंद आ रहा है। दस पैसे के लिए आतुर खड़े होते हैं हाथ फैला कर, पता नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे। जिंदगी में बड़ी पुलक आ गई। पता नहीं, मिलेंगे, नहीं मिलेंगे! बड़ा दांव है। दस पैसे के लिए हाथ फैलाया, हो सकता है आदमी मना कर दे कि नहीं है। हाथ वापस लौटा लेना पड़ेगा। सुबह की चाय नहीं पी है, हाथ फैला कर पुलक से प्रतीक्षा कर रहे हैं। और जब दो घंटे के बाद एक कप चाय पी पाते हैं तो उस चाय का मजा ही दूसरा है।

ये अमीरी से ऊबे हुए लोग गरीब हो सकते हैं। यानी मेरा कहना यह है कि गरीबी अमीर आदमी की लास्ट लग्जरी है, आखिरी विलास है, जो अमीर आदमी ही अफर्ड कर सकता है, गरीब आदमी नहीं। इसलिए जब अमीरी बढ़ती है तो गरीबी के नये-नये फैड और क्रीड पैदा हो जाते हैं। आज अमरीका गरीब होने को बड़ा उत्सुक है। इसलिए कोई महर्षि को पकड़ लेता है, कभी किसी को पकड़ लेता है, कभी किसी के पीछे चला जाता है। वह गांधी के लिए भी बड़ा आतुर है। वह आतुरता अमीर अमरीका की है जो अमीरी से ऊबा हुआ है और गरीबी में रस लेना चाहता है।

अमरीका में आज उपवास की बड़ी चर्चा है। और जगह-जगह स्थान बने हुए हैं जहां लोग आकर उपवास कर रहे हैं। असल में जब ओवर फैड, ज्यादा खा जाते हैं लोग तो उपवास शुरू हो जाता है। लेकिन गरीब आदमी को उपवास का क्या मतलब है? मैं उरली कांचन में कभी-कभी ठहरता हूं। वहां उपवास करने लोग आते हैं। तीस-तीस दिन, चालीस-चालीस दिन के लोग उपवास करते हैं। लेकिन वे, वे ही लोग होते हैं जिनके पास इतनी चर्बी है कि चालीस दिन कुछ हर्जा नहीं होता, फायदा ही होता है। वह चर्बी चुक जाती है, वे आनंदित ही घर लौटते हैं। लेकिन गरीब आदमी को चालीस दिन का उपवास करवा दो तो जिंदा घर नहीं लौटेगा। उपवास करने के लिए ओवर फीडिंग चाहिए। ज्यादा खा लिया हो, उपवास बड़ी अच्छी बात है। इसलिए जो कौमें ज्यादा संपन्न हो जाती हैं उनमें उपवास चल जाता है--जैसे जैनियों में। उसका और कोई कारण नहीं है। जैनों में उपवास चलने का कुल कारण इतना है कि इस देश में सबसे ज्यादा सुलभ खाने की व्यवस्था, धन की व्यवस्था, तिजोरियां उनके पास हैं। तीन हजार साल से उनके पास हैं। उसकी वजह से वे उपवास में बड़े आनंदित होते हैं। वे कहते हैं, उपवास बड़ा धार्मिक कृत्य है। उपवास सिर्फ पश्चात्ताप है ज्यादा खाने का। जिसने ठीक-ठीक खाया

है उसे उपवास की कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा जो खाएगा उसे उपवास करना पड़ेगा, दंडित होना पड़ेगा। स्वाभाविक है।

गरीब, लेकिन कोई होने को राजी नहीं है, न होना चाहिए। हां, कुछ रुग्ण चित्त लोग अपने को सताने को राजी हो सकते हैं। मैंने कहा, तीन तरह की गरीबियां स्वीकृत हो सकती हैं--एक ऐसी गरीबी जो अमीरी से भी ज्यादा अमीर हो। एक ऐसी गरीबी जो अमीरी से स्वाद बदलने के लिए अंगीकार की गई हो। और एक ऐसी गरीबी जो मैसोचिस्ट होती है। कुछ लोग हैं जो अपने को सताने में रस लेते हैं--रुग्ण, बीमार; अपने को सताने में भी रस ले सकते हैं, लेकिन वे पैथॉलाजिकल हैं। उनका इलाज होना चाहिए। इन तीन तरह के लोगों के अतिरिक्त दुनिया में कोई आदमी दुख के वरण करने के लिए न राजी होता है, न होना चाहिए।

लेकिन हिंदुस्तान तीन हजार साल से दुख की शिक्षा दे रहा है कि दुख को वरण करो। इसलिए यहां एक उपद्रव पैदा हो गया है। वह उपद्रव यह है कि जब तक हम गुलाम थे तब तक तो ठीक था। अब हम स्वतंत्र हो गए हैं। अब हम सबको सुख की एक पागल दौड़ शुरू हुई है, जो बिल्कुल ही फैनेटिक है। क्योंकि हमने इतने दिन तक दुख को वरण करने की चेष्टा की है कि अब सब बांध तोड़ कर हम सुख की तरफ दौड़ रहे हैं। अब सब बांध तोड़ दिए। अब वह सुख चाहे दूसरे को दुख देने से मिले तो भी हम लेने को तैयार हैं। हमने इतने दिन तक गरीबी को पकड़ने की, आदर देने की कोशिश की है कि अब हम अमीरी की तरफ पागल हो गए हैं। अब वह अमीरी चाहे हजारों लोगों की छाती पर खड़े होकर मिलती हो तो भी हम तैयार हैं। इसलिए रिश्वत है, इसलिए भ्रष्टाचार है, इसलिए बेईमानी है। बेईमानी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, अमीर होने की पागल तरकीबें हैं। और यह मुल्क इतने दिन से गरीबी का आदर कर रहा है कि यह पागल ढंग से ही अमीर हो सकता है। इसे और कोई ढंग नहीं दिखाई पड़ता है। असल में हम सुख को स्वस्थ रूप से स्वीकार नहीं करते हैं, इसलिए हम बीमार होकर ही सुख की तरफ दौड़ सकते हैं। इस देश का भ्रष्टाचार, इस देश की रिश्वतखोरी, इस देश की कालाबाजारी हमारे सुख के विरोध से पैदा हुई है, लेकिन गुलामी में उनका पता न चला।

असल में, सभी पता स्वतंत्रता में चलता है। स्वतंत्रता का मतलब यह है कि हम जो करना चाहें उसके लिए स्वतंत्र हुए। गुलामी का मतलब यह है कि जो हम करना चाहें उसके लिए हम स्वतंत्र नहीं हैं। तो गुलामी में हम स्वतंत्र न थे, जो हम होना चाहें। अब हमें मौका मिला जो हम होना चाहें। तो अब हम हो गए हैं पूरे अर्थों में। अब हम होने की कोशिश कर रहे हैं। और उस कोशिश को अगर हम ऊपर से सुलझाने की कोशिश करेंगे तो वह हल न होगी।

मामला ऐसा है कि एक आदमी को हम तीस दिन भूखा रखें, तीस दिन उपवास करवाएं और अचानक उसको चौके में पहुंचने का मौका मिल जाए तो यह पक्का है कि वह आदमी ज्यादा खा लेगा। और यह भी पक्का है कि जितना नुकसान उसे भूखे रहने से पहुंचा होगा उससे ज्यादा नुकसान वह खाने से पहुंचा लेगा। और जब वह खाने से नुकसान पहुंचा ले तो वह भी सोचेगा कि खाना बुरी चीज है, फिर भूखा रहना चाहिए। हम तीन हजार साल से दमन किए हुए हैं, सुख की वृत्ति का। वह जो सुख के खोज की सहज वृत्ति है मनुष्य के भीतर उसे हमने दबाया है और काटा है। अब हम मुक्त हुए हैं, अब हम स्वतंत्र हुए हैं। इसलिए अब स्वतंत्रता ने हमें मौका दिया है। अब हम उस मौके का तीव्रता से प्रयोग कर रहे हैं। अब हम फीवरिश, बुखार की तरह दौड़ रहे हैं। और किसी भी तरह सुख मिल जाए तो उसको पाने की कोशिश में हैं। लेकिन यह कोशिश स्वस्थ नहीं है। और यह स्वस्थ तभी हो सकेगी जब हम बुनियादी दमन को दूर करने के लिए तैयार हो जाएं।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, भारत को अपनी इन बीमारियों से मुक्त होने के लिए सुख की सहज खोज को स्वीकार करना पड़ेगा। लेकिन हम स्वीकार करते हैं, आवश्यकताएं कम करो, और मन आवश्यकताएं बढ़ाता है। सच तो यह है कि जीवन का नियम ही विस्तार है, संकोच नहीं है। एक बीज को गपा दें जमीन में, एक छोटा सा बीज फैलने लगता है, अंकुर फेंक देता है, पत्ते निकल आते हैं, बड़ा वृक्ष हो जाता है, फूल आकाश में खिलने लगते हैं। एक छोटा सा बीज फैल जाता है। जब पूरा फैल जाता है तब तृप्त हो पाता है। जब फूल खिल जाते हैं और फल लग जाते हैं तब तृप्त होता है। बीज को सिखाओ कि आवश्यकताएं मत बढ़ाना... क्योंकि ध्यान रहे, वृक्ष की आवश्यकताएं बीज से बहुत ज्यादा हैं। सच तो यह है कि बीज की कोई आवश्यकता ही नहीं है। बीज की आवश्यकता तभी बढ़नी शुरू होती है जब वह अंकुर बनता है। और जब वह फैलता है तब उसे पानी चाहिए और खाद चाहिए और सूरज की रोशनी चाहिए और किसी माली की रक्षा चाहिए और किसी का प्रेम चाहिए। उसे सब चाहिए, तब वह फैल पाएगा। उसकी आवश्यकताएं बढ़ती चली जाती हैं।

यह देश एक गलत शिक्षा के अंतर्गत जी रहा है कि आवश्यकताओं को कम करो। आवश्यकताओं को कम करने का मतलब? चित्त का जो विस्तार का सहज नियम है उसे रोको, दबाओ। हम समझाते हैं अपने देश को कि चादर से हमेशा पैर भीतर रखो। और मजा यह है कि चादर अपने आप नहीं बढ़ती और आदमी अपने आप बढ़ता चला जाता है। अब वह आदमी बड़ा हो रहा है और चादर उतनी की उतनी रहती है। और पांव भीतर सिकोड़ो, हाथ भीतर सिकोड़ो। कभी हाथ बाहर निकलता है, कभी पैर बाहर निकलता है, कभी सिर बाहर निकलता है। और चादर? चादर बढ़ानी नहीं है। क्योंकि चादर वही बढ़ाता है जो पैर फैलाता है। जब पैर बाहर निकलते हैं तब जरूरत आती है कि चादर को बढ़ाओ। जब पैर ही बाहर नहीं निकलते तो चादर को बढ़ाने की जरूरत ही नहीं आती।

यह देश कह रहा है अब तक कि आवश्यकताएं कम करो। फिर इसके दोहरे परिणाम होते हैं। एक तो परिणाम यह होता है कि जो आवश्यकताएं बढ़ा कर जीता है वह पापी मालूम पड़ने लगता है दूसरों को और खुद को भी। उसको लगता है कि मैं कुछ गलती कर रहा हूं। मैं कुछ पाप कर रहा हूं। तो उसके विस्तार की जो सहजता है वह नष्ट हो जाती है। पाय.जनस हो जाती है, जहर मिल जाता है, पाप का बोध सम्मिलित हो जाता है। और दूसरी तकलीफ यह होती है कि वह लोगों से यह छिपाने की कोशिश करता है कि मैं आवश्यकता नहीं बढ़ा रहा। आवश्यकताएं पीछे के दरवाजे से बढ़ा रहा है। बाहर के दरवाजे पर चटाइयां लगा लेता है।

जब डाक्टर राजेंद्र प्रसाद पहली दफा राष्ट्रपति हुए तो मैं दिल्ली गया। एक मित्र ने मुझे कहा कि देखते हैं, कितने त्यागी पुरुष हैं! जहां वायसराय रहता था उस भवन के अंदर उन्होंने चटाइयां लगा ली हैं। मैंने कहाः अजीब पागल हैं। और खर्चा ज्यादा किया। चटाइयों का खर्चा तो कम से कम वायसराय नहीं करता था। बाकी खर्च उतना ही है जारी। बैठक के अंदर, वायसराय की बैठक के अंदर चटाई लगा ली और वे झोपड़े के भीतर हो गए क्योंकि वे चटाई के भीतर हैं। और एक हजार नौकर काम कर रहे हैं और उतना बड़ा महल और वह सारा विस्तार जारी है, लेकिन राजेंद्र प्रसाद चटाइयों के भीतर बैठे हैं। मैंने कहा कि वायसराय सीधा-सादा आदमी था, राजेंद्र प्रसाद थोड़े तिरछे आदमी मालूम पड़ते हैं। वायसराय जैसा जी रहा था, जी रहा था। यह चटाई का धोखा तो खतरनाक है। यह पाखंड है, यह हिपोक्रेसी है।

यह तो ऐसा है कि मैंने उनसे कहाः एक संन्यासी, एक बड़े संन्यासी मेरे साथ एक दिन कार में जा रहे थे। इम्पाला गाड़ी है। मैं तो पहले ही जाकर बैठ गया था। फिर संन्यासी के शिष्य आए, उन्होंने कहाः जरा उठिए, क्योंकि संन्यासी जी सोफे पर नहीं बैठते हैं और गाड़ी में सोफा है। तो मैंने कहाः संन्यासी जी कैसे बैठेंगे, किस

तरकीब से बैठेंगे? उन्होंने कहाः पहले सोफे पर चटाई डाल देंगे, फिर संन्यासी जी चटाई पर बैठ जाएंगे। वे चटाई पर ही बैठते हैं, वे सोफे पर कभी नहीं बैठते। फिर चटाई डाल दी गई। मैं सोफे पर रहा, संन्यासी चटाई पर हो गए। इम्पाला गाड़ी जा रही है, उन्हें मतलब नहीं है। वे अपनी जादू की चटाई पर जा रहे हैं।

यह बेईमानी पैदा होती है। जब हम आवश्यकताओं को कम करने की शिक्षा देते हैं जो कि अप्राकृतिक है, नैसर्गिक नहीं है, चित्त के विकास के अनुकूल नहीं है। कोई बीज विकसित नहीं होता संकोच से। मनुष्य भी विकसित नहीं होता है। विस्तार जीवन का नियम है। वैज्ञानिक कहते हैं कि चांद-तारे भी विस्तार पा रहे हैं, एक्सपैंड कर रहे हैं। सारा जगत एक्सपैंडिंग है, सब चीजें फैल रही हैं। चांद-तारे करोड़ों-अरबों मील की रफ्तार से फैलते जा रहे हैं। विस्तार! ब्रह्म शब्द का मतलब भी विस्तार होता है। ब्रह्म का मतलब होता है, दि एक्सपेंडेड। वह जो फैला हुआ है और फैलता ही चला जा रहा है। विस्तार और ब्रह्म एक ही शब्द से बने हैं। ब्रह्मांड का मतलब, जो फैलता ही चला जा रहा है। जीवन का नियम तो फैलाव है, सब फैल रहा है। लेकिन हमको एक शिक्षा दी गई है सिकुड़ने की--सिकोड़ो अपने को। सिकुड़ना चूंकि जीवन के प्रतिकूल है इसलिए पाखंड पैदा हुआ है।

हिंदुस्तान की एक जलती समस्या है पाखंड, सब तरह का पाखंड। जो आदमी पक्का अहंकारी है, वह हाथ जोड़ कर कहता है, मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके पैर की धूल हूं। जरा उसकी आंखों में देखें। वह ऐसा लग रहा है कि अगर मौका मिल जाए तो आपको अभी पैर के नीचे दबा दे। लेकिन वह कह रहा है कि मैं विनम्र हूं, मैं सेवक आदमी हूं, मैं आपके पैर की धूल हूं। यह हम पाखंड सिखा रहे हैं। वह आदमी भीतर तिजोरी बड़ी करता जा रहा है और वस्त्र सादे पहने हुए है। वह पैदल चल रहा है और महल बड़ा किए जा रहा है। वह यूरोप और अमरीका के बैंकों में धन इकट्ठा कर रहा है और यहां बैठ कर चर्खा कात रहा है। बहुत अजीब मामला है। यह भारत का जलता हुआ प्रश्न है, हिपोक्रेसी, पाखंड! हर आदमी पाखंड के साथ में खड़ा हो गया है। तोड़ेंगे कैसे इसे हम?

जब तक हम उन नियमों को नहीं बदलते जिनकी वजह से पाखंड पैदा होता है, तब तक यह तोड़ना मुश्किल है। जीवन को सहज स्वीकार करना होगा तो हिपोक्रेसी टूट सकती है।

टायनबी ने एक बात लिखी है। उसने लिखा है कि पश्चिम की संस्कृति सेंसुअस है, सेंसेट है, ऐंद्रिक है। कोई मुझे वह किताब पढ़ कर सुना रहा था। पक्के भारतीय मुझे वह किताब पढ़ कर सुना रहे थे। उन्होंने कहाः देखते हैं, टायनबी जैसा विचारक कहता है कि पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है, ऐंद्रिक है। तो मैंने कहाः इतनी अकड़ आप किसलिए दिखा रहे हैं? अगर पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है तो पूरब की संस्कृति हिपोक्रेट है, पाखंडी है।

और ऐंद्रिक होना पाखंडी होने से बेहतर है। क्योंकि ऐंद्रिक होना जीवन का सहज नियम है। ऐंद्रिक व्यक्ति कभी आध्यात्मिक भी हो सकता है क्योंकि जिसने शरीर को स्वीकार किया है वह किसी दिन आत्मा को भी स्वीकार कर सकता है। जिसने द्वार में प्रवेश किया वह कभी भीतर के गर्भ में भी पहुंच सकता है। जो कभी सीढ़ियां चढ़ा है वह कभी मंदिर के भीतर भी जा सकता है। लेकिन पाखंडी कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकता। हमारी संस्कृति आध्यात्मिक नहीं, पाखंडी है, क्योंकि हमने जो नियम निर्मित किए हैं, वे आदमी को झूठा होने के लिए मजबूर करते हैं। और अगर वह सीधा-सीधा साफ-साफ हो तो पापी मालूम पड़ता है, कंडेमनेशन मालूम पड़ता है, चारों तरफ निंदा मालूम पड़ती है। वह जितना पाखंडी हो उतना आदर, उतना सम्मान मिलता है।

मैं एक आश्रम में ठहरा हुआ था। तीन दिन वहां था। आश्रम था, तो आश्रम में जिस तरह के जीव रहते हैं वैसे जीव वहां थे। एक लड़की ने मुझे आकर रात को कहा--डरते हुए, जब सब चले गए, मैं बिस्तर पर सोने

गया, वह आई। उसने कहाः मुझे एक बात कहनी है। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। मैं कालेज से निकली थी और जनता की सेवा करने के काम में आ गई। जिस गुरु से मैंने जनता की सेवा का पाठ लिया, उन्होंने मुझे ब्रह्मचर्य, आजीवन ब्रह्मचर्य का नियम दिलवा दिया। उन्होंने कहा कि तू आजीवन ब्रह्मचारी रह! तब मैं जानती भी न थी। क्योंकि मैं सेक्स ही न जानती थी तो ब्रह्मचर्य कैसे जानती? मुझे कुछ पता ही न था कि ब्रह्मचर्य यानी क्या? जब इतना बड़ा महात्मा कहता है तो मैंने कसम खा ली और जीवन भर के लिए नियम ले लिया।

लेकिन जिंदगी नियम नहीं मानती। जिंदगी बड़ी अदभुत है। वह सब नियम तोड़ देती है, सब दीवालें तोड़ देती है।

उसने कहाः उसी सेवा में लगे-लगे एक व्यक्ति से मेरा प्रेम हो गया। और जब प्रेम हुआ तब हम निकट, निकट और निकट आना चाहे। तब मुश्किल खड़ी हो गई। क्योंकि वह भी आजीवन ब्रह्मचर्य का पाठ लिए बैठा था। अब हम क्या करें? अब हम इतनी कठिनाई में पड़ गए कि हमने अपने गुरु को जाकर कहा कि हम तो मुश्किल में पड़ गए हैं। आप हमें कृपा करके आशीर्वाद दें कि हम विवाह कर लें। हम तो बहुत कठिनाई में पड़ गए हैं। गुरु पहले तो बहुत नाराज हुए। असल में गुरुओं की गुरुता नाराजगी पर ही निर्भर है। अगर वे नाराज न हों तो गुरुता खिसक जाए। वे भारी नाराज हुए कि यह बहुत पाप है, यह है, वह है। उन्होंने हजार उपदेश दिए, नरक में सड़ोगे। लेकिन वे नरक में जाने को तैयार थे लेकिन प्रेम छोड़ने को तैयार न थे। और कोई भी भला आदमी नरक में जाने को तैयार होगा, प्रेम छोड़ने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम इतना बड़ा स्वर्ग है कि हजार नरक सहे जा सकते हैं। उन्होंने कहाः जो कुछ भी हो, नरक तो जब होगा, होगा--अभी तो हमें विवाह की आज्ञा दें।

असल में पुराने नरक का अब प्रभाव नहीं रहा, क्योंकि आदमी ज्यादा निर्भय हुआ है। पुराना आदमी बहुत भयभीत था। उसको डरवाया जा सकता था। नया आदमी निर्भय हुआ है। उसे इतने आसानी से नहीं डरवाया जा सकता है। इसलिए पुराने सब समाधान गड़बड़ हो गए। वह डरे हुए आदमी को दिए गए समाधान थे। आज का आदमी निर्भय है। वह कहता है, होगा नरक। ठीक है, निपट लेंगे, देखेंगे। पहुंचेगे, हड़ताल तो कर सकते हैं नरक में! घेराव तो कर सकते हैं! देखेंगे नरक में। और जब सभी को नरक में जाना है तो देख लेंगे नरक में, घेराव कर लेंगे, हड़ताल कर लेंगे, कुछ करेंगे; सत्याग्रह, कुछ उपाय करेंगे। लेकिन अब नरक से मत डराओ।

उन दोनों ने कहा कि आप हमको क्षमा करें, नरक में जाने को तैयार हैं, हमारा विवाह करवा दें। आश्रम में मीटिंग बुला कर, पांच सौ, छह सौ लोगों के सामने गुरु ने उनका विवाह करवा दिया। तालियां बज गईं, फूलमालाएं डलवा दीं। फिर गुरु ने आशीर्वाद दिया और आशीर्वाद में उसने कहा कि तुम दोनों ने विवाह किया, यह बहुत अच्छा है, यह बड़ा पवित्र कार्य है। लेकिन ध्यान रहे, जीवन भर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। अब वे दोनों नासमझ उस भीड़ के सामने फिर चक्कर में आ गए और भीड़ ने तालियां बजाईं। तालियां बड़ी खतरनाक हैं। किसी से गलत काम करवाना हो तो तालियां बजा कर करवाया जा सकता है। ये सारे नेताओं से जो गलत काम हो रहे हैं आपकी तालियों से हो रहे हैं। जरा तालियां बहुत कंजूसी से बजाना भविष्य में, क्योंकि आपकी तालियां गलत खबर दे देती हैं। पांच लाख आदमी इकट्ठे हो जाएं, किसी नेता को ताली बजा दें, वह पागल हो जाएगा आदमी। कि ये पांच लाख आदमी मेरे साथ हैं। और उसको पता नहीं कि उसके ही दस आदमियों ने किराए की ताली बजाई है तो बाकी लोग सिर्फ साथ दे देते हैं। तालियां बजा दीं पांच सौ लोगों ने, इतना ऊंचा कार्य! उन दोनों ने फिर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया।

मैं जब उस आश्रम में ठहरा, तो उस लड़की ने मुझसे कहा कि दो साल हो गए हैं, या तो मैं आत्महत्या करूं या क्या करूं? मुझे फिट भी आने लगे, हिस्टीरिया भी शुरू हो गया, और रात भर सिर घूमता है, सिर दुखता है, चक्कर आते हैं। और हम इतने डर गए हैं कि अब क्या होगा। और पति से मैं इतनी डर गई हूं, और पति मुझसे डरता है क्योंकि कहीं ब्रह्मचर्य न टूट जाए! तो हम ताले लगा लेते हैं एक-दूसरे के कमरे में और चाबियां दूसरे के कमरे में फेंक देते हैं कि रात कहीं खोल न लें।

अब यह आदमी के जीने का ढंग है? इससे जिंदगी सुंदर होगी? इससे जिंदगी प्रेमपूर्ण होगी? इससे जिंदगी निपट पाखंड हो जाएगी। तो मैंने उनसे कहा, तुम घबड़ाओ मत। आज शाम कोई हजार लोग मुझे भी सुनने आने वाले हैं। ताली मैं बजवा दूंगा। ब्रह्मचर्य का व्रत छुड़वा देता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि ब्रह्मचर्य का व्रत छोड़ कर स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा। घबड़ाना मत। क्योंकि वहां मेरे खयाल में एक भी देवता ब्रह्मचर्य का व्रत पालन कर रहा हो, ऐसा शास्त्रों में नहीं है। तुम बिल्कुल बेफिकर रहो, तुम जा सकोगे।

यह हम एक अस्वाभाविक ढंग से जीवन को ढालने की जो कोशिश किए, उसने हमारे सारे प्रश्न खड़े कर दिए। एक भी प्रश्न को हम हल नहीं कर पाते, क्योंकि जिन समाधानों से प्रश्न पैदा होते हैं, प्रश्न पैदा होने पर उन्हीं समाधानों को हम वापस दोहराते हैं। जो दवा हमारी बीमारी है उसी दवा को हम और दिए चले जाते हैं। बीमारी और बढ़ती चली जाती है। और जैसे-जैसे इस देश में दवा होती है वैसे-वैसे बीमार और बीमार होता चला जाता है।

मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूं रि-कंसिडर करने की, पुनर्विचार करने की। हमारी सारी समस्याओं के पीछे हमारे पुराने समाधान हैं। उन पुराने समाधानों से मुक्त होना पड़ेगा। और प्रत्येक समस्या को नये छोर से, नये सिरे से, फ्रेशली, बिल्कुल ताजे ढंग से--जैसे हमने उस समस्या को कभी जाना नहीं--फिर से छूना पड़ेगा और फिर से खोलना पड़ेगा।

यदि हम अपनी समस्याओं को समाधानों के पर्दे से हट कर सीधा देखना शुरू कर सकें तो भारत की ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जो हल न हो जाए। और यदि हम समस्याओं को समाधानों को मान कर ही हल करने की कोशिश करेंगे तो भारत की ऐसी कोई समस्या नहीं है जो रोज दुगुनी बड़ी न होती चली जाए। समाधानों से हट जाना पड़ेगा और समस्याओं को सीधा लेना पड़ेगा।

समस्याएं बहुत बड़ी नहीं हैं। जिंदगी के साथ प्रश्न होते ही हैं और जिन्हें जीना है उन्हें प्रश्न हल करने ही पड़ते हैं। हमारा कोई प्रश्न बहुत बड़ा नहीं है, न हमारी गरीबी का प्रश्न बहुत बड़ा है। अगर हमारे पुराने समाधान छोड़े जा सकें तो गरीबी इस देश की भी मिट सकती है। न हमारी नैतिकता का प्रश्न बहुत बड़ा है; अगर हम पुरानी नैतिक मान्यताओं की व्यर्थता को समझ सकें तो नई नैतिक मान्यताएं पैदा की जा सकती हैं। न हमारे युवकों की समस्या बहुत बड़ी है। अगर हम पुराने आधारों को ही युवकों पर न थोपे चले जाएं तो हमारे युवक की शक्ति मुक्त हो सकती है और देश के सृजन में लग सकती है।

इन आने वाले दिनों में जिंदगी की जो भी जीवित समस्याएं हैं, आप मुझे लिख कर दे देंगे--जिसके जो खयाल में जीवित समस्या है, मैं उस पर बात करना चाहूंगा। और उसके लिए क्या नया समाधान हो सकता है, उसकी भी बात करना चाहूंगा। मेरी बातों को मानना जरूरी नहीं है। मैं इस बात का सीधा-सीधा दुश्मन हूं कि कोई आदमी किसी को अपनी बातें मनवाए। बुरा है। वही तो पुराना ढंग है। नहीं, वह नहीं चाहिए। मेरी बातें मानने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी बात सुन ली, यह भी बहुत कृपा है। उस पर सोच लिया, यह भी बहुत

कृपा है। अगर आप सोचने लग जाएं तो मैं मानता हूं कि आप भी उन समाधानों पर पहुंच जाएंगे जिन समाधानों से देश का हल हो सकता है।

आप सोचने लग जाएं इसकी मेरी फिकर है। मैं अपने विचार आपको दे दूं, यह मेरी चिंता नहीं है। मेरी चिंता यह है कि आप विचार करने लग जाएं। यह देश सोचने लगे तो कोई कारण नहीं है कि हम अगर सारे लोग सोचें तो हमारी कोई भी समस्या बची रह जाए और कोई भी प्रश्न ऐसा हो कि हल न हो सके। सब सवाल हल हो सकते हैं। असल में सब सवालों के भीतर ही उनके हल छिपे होते हैं, लेकिन सोचने वाला मस्तिष्क चाहिए। और हमें सिखाया गया है कि कभी सोचना मत। सोचना ही मत, सोचना पाप है। मानना, सोचना मत। मैं नहीं कहना चाहता आप मुझे मानना। मेरी बातें इतना ही कर दें कि आपको उकसा दें, आपके भीतर थोड़ी चोट कर दें, थोड़े शॉक लग जाएं, आप थोड़े हिल जाएं और सोचना शुरू कर दें तो मेरा काम पूरा हो गया।

आप अगर सोचते हैं, हम अगर सोचते हैं, तो हम बहुत जल्दी उन निष्कर्षों पर पहुंच जाएंगे जो अनिवार्य रूप से तार्किक चिंतन से पैदा होते हैं। तो जो भी आपके प्रश्न हों--यह तो मैंने प्राथमिक बात कही--जो भी आपको जलते हुए प्रश्न लगते हों वे आप लिख कर दे देंगे तो मैं तीन दिनों में उनकी बात करना चाहूंगा।

मेरी बातों को इतने शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

गरीबी और समाजवाद

बहुत सी समस्याएं हैं और बहुत सी उलझने हैं। लेकिन ऐसी एक भी उलझन नहीं जो मनुष्य हल करना चाहे और हल न कर सके। लेकिन यदि मनुष्य सोच ले कि हल हो ही नहीं सकता तब फिर सरल से सरल उलझन भी सदा के लिए उलझन रह जाती है। इस देश का दुर्भाग्य है कि हमने बहुत सी उलझनों को ऐसा मान रखा है कि वे सुलझ ही नहीं सकती हैं। और एक बार कोई कौम इस तरह की धारणा बना ले तो उसकी समस्याएं फिर कभी हल नहीं होती हैं।

जैसे बड़ी से बड़ी हमारी समस्या गरीबी की, दरिद्रता की, दीनता की है। लेकिन इस देश ने दीनता, दरिद्रता को दूर करने की बजाय ऐसी व्याख्याएं स्वीकार कर ली हैं, जिनसे दरिद्रता कभी भी दूर नहीं हो सकेगी। बजाय दरिद्रता को समझने के कि हम उसे कैसे दूर कर सकें, हमने दरिद्रता को इस भांति समझा है कि हम कैसे उसे स्वीकार कर सकें। दूर करना दूर, स्वीकार करने की प्रवृत्ति ने उसे स्थायी बीमारी बना दिया है। सोचा नहीं--ऐसा नहीं है, लेकिन गलत ढंग से सोचा। और कोई न सोचे तो कभी ठीक ढंग से सोच भी ले, लेकिन एक बार गलत ढंग से सोचने की आदत बन जाए तो हजारों साल पीछा करती है। गरीब हम बहुत पुराने समय से हैं। सच तो यह है कि हम अमीर कभी भी नहीं थे। हो भी नहीं सकते थे।

देश के सोने की चिड़िया होने की बातें हैं। वे बातें कुछ लोगों के लिए हमेशा सच रही हैं, पूरे देश के लिए कभी नहीं। कुछ लोगों के लिए यह देश हमेशा सोने की चिड़िया था, अब भी उनके लिए है लेकिन पूरे देश के लिए सोने की चिड़िया की बात बिल्कुल बेमानी है। देश हमेशा से गहरी गरीबी में रहा है। सच तो यह है कि हम इतने गरीब थे कि गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी हम नहीं कर सके। गरीबी के खिलाफ भी विद्रोह तब शुरू होता है जब अमीरी थोड़ी सी फूटनी शुरू हो जाती है। गरीब गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी नहीं कर सकता है। बहुत गरीब कैसे विद्रोह करेगा? अस्पताल जाने के लिए भी बिल्कुल बीमार होना काफी नहीं, थोड़ा सा स्वास्थ्य चाहिए ताकि अस्पताल तक जाया जा सके।

जब अमीरी की थोड़ी सी किरणें फूटनी शुरू होती हैं तब गरीबी के खिलाफ विद्रोह शुरू होता है। जब गरीबी इतनी ज्यादा होती है कि हमारे प्राण और हमारी आत्मा सब उसमें डूब जाते हैं तो गरीबी के खिलाफ बगावत भी पैदा नहीं होती। यह देश बहुत पुराने समय से, सदा से, सनातन से गरीब है। यह गरीबी हमने सोचा इस पर? हमारे विचारकों ने न सोचा हो, ऐसा नहीं है, लेकिन हमारे विचारकों ने इस गरीबी को इस भांति सोचा ताकि यह स्वीकृत हो जाए, अंगीकार हो जाए। हमने गरीबी के लिए व्याख्याएं की हैं। और हमारी सबसे खतरनाक व्याख्या यह थी कि हमने गरीबी को व्यक्ति के कर्मों से जोड़ दिया। यह इतनी खतरनाक, इतनी सुसाइडल, इतनी आत्मघाती व्याख्या थी कि इसके कारण हम पांच हजार साल गरीब रहे। और अगर यह व्याख्या अब भी जारी रहती है... और ऐसा लगता है कि अब भी जारी है!

साधु और संत और महात्मा गांव-गांव लोगों को यही समझाते फिर रहे हैं कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के फल के कारण। गरीबी को पिछले जन्मों से जोड़ देने का मतलब यह है कि गरीबी नहीं बदली जा सकती। उसके बदलने का कोई उपाय नहीं है, उसे भोगना ही पड़ेगा। वह अपने कर्मों का फल है। अगर मैंने

आग में हाथ डाला है तो अब जल गया हूं तो भोगना ही पड़ेगा। पिछले जन्मों के कर्मों को अब बदलने का कोई उपाय नहीं है। पिछले जन्मों के कर्म वे हैं जो हो चुके हैं और उनका फल--गरीबी--मुझे आज भोगना पड़ रहा है।

हमने एक व्याख्या की जिसने गरीबी पर सील मोहर लगा दी कि इसे अब कभी नहीं तोड़ा जा सकता। गरीबी भोगनी ही पड़ेगी। और अगर गरीबी मिटानी हो तो इस जन्म में अच्छे कर्म करो ताकि अगले जन्म में गरीबी न रहे, अमीर हो जाएं। और अच्छे कर्मों में निश्चित ही बगावत नहीं आती। अच्छे कर्मों में विद्रोह नहीं आता। अच्छे कर्मों में क्रांति नहीं आती। अच्छे कर्मों में आती है शांति। क्रांति तो बुरे कर्मों का ही हिस्सा है। इसलिए शांति से जीयो, संतोष से जीयो, सांत्वना रखो, अगले जन्म की प्रतीक्षा करो। गरीबी सुनिश्चित हो गई, उसको बदलने का कोई उपाय न रहा।

एक बार जब हमने यह तय कर लिया कि व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोग रहा है गरीबी के रूप में, तो फिर गरीब पर दया करना भी बेमानी हो गया। गरीब के साथ सहानुभूति भी व्यर्थ हो गई। अगर मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूं तो दया और सहानुभूति की क्या जरूरत है? इसलिए यह देश गरीबी के प्रति बिल्कुल इनसेंसिटिव हो गया, संवेदनाहीन हो गया। अगर एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है तो उस पर दया करने का कोई भी तो अर्थ नहीं है, वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अपने कर्मों का फल भोगना ही चाहिए। और अगर मैं उसे दो पैसे दान कर रहा हूं तो उस भिखमंगे पर दया करके नहीं, वे दो पैसे मैं दान कर रहा हूं अगले जन्म में फिर अमीर होने के लिए, शुभ कर्म कर रहा हूं। उस भिखमंगे से उन दो पैसे के दान का कोई संबंध नहीं है। उस गरीब पर दया करने का कोई सवाल नहीं है। सिर्थ एक सवाल है कि उस पर दया करके मैं स्वर्ग की सीढ़ियों पर पैर रख सकता हूं। गरीब की गरीबी मेरे लिए सी.ढियों का काम बन सकती है, स्वर्ग तक पहुंचा सकती है।

दान को बुनियादी धर्म कहा है। इसलिए नहीं कि उससे गरीब को कुछ हित होगा। गरीब अपना फल भोग रहा है। दान से अमीर को हित होगा कि वह स्वर्ग के द्वार खोल लेगा। दान चाबी है। करपात्री जी ने एक किताब लिखी है और उसमें लिखा है कि समाजवाद कभी नहीं आना चाहिए। क्योंकि जिस दिन समाजवाद आ जाएगा उस दिन कोई गरीब न होगा। जिस दिन कोई गरीब न होगा, दान कौन देगा और कौन लेगा? और बिना दान के स्वर्ग का दरवाजा बंद है--स्वर्ग का दरवाजा बंद हो जाएगा।

गरीब रहना चाहिए ताकि हम उस पर सीढ़ियां बना सकें। दीन-दरिद्र रहना चाहिए ताकि उसके कंधे पर अपने पैर रख कर हम ऊपर जा सकें। इतनी संवेदनहीनता गरीबी के प्रति हममें पैदा हुई--हमारी व्याख्या के कारण। एक बार व्याख्या हम ऐसी कर लें तो फिर संवेदनहीन हो जाते हैं।

पुराने जमाने में यज्ञों में हम गाय को, बैल को और कुछ लोग कहते हैं, आदमी को भी काटते थे। लेकिन मजे से काटते थे, काटने वाले को जरा पीड़ा न होती थी, क्योंकि मान्यता यह थी कि काटा गया बकरा, काटी गई गाय स्वर्ग पहुंच जाती है। और जब स्वर्ग भेज रहे हैं तो काटने में तकलीफ क्या? तो यज्ञ में हिंसा के प्रति हम संवेदनहीन हो गए थे। कोई संवेदना का सवाल न था, हम स्वर्ग भेज रहे हैं। वह तो कुछ लोग इस मुल्क में हुए--चार्वाक, और उन्होंने कहा कि फिर अपने पिता को क्यों नहीं काट देते हो? स्वर्ग चला जाएगा। तब हमको खयाल आया कि हम बकरे और गाय के साथ क्या कर रहे हैं? लेकिन उस दिन तो गाय और बकरे को काटने वाला आदमी बड़ा कीमती था।

एक शब्द आपने सुना होगा। आज कोई भी लिखता है, अपने नाम के पीछे शर्मा, लेकिन आपको पता न होगा कि शर्मा का मतलब क्या है। शर्मा का मतलब है जो यज्ञ में गाय-बैल काटता था। शर्मन का मतलब काटने

वाला। यह बड़ा गंदा शब्द है। इसका मतलब ही है काटने वाला, शर्मन, काट दे! तो वह जो काटता था गाय-बैल को, वह बड़ा कीमती आदमी था। क्योंकि वह गाय-बैल को स्वर्ग पहुंचाता था। तो वह बड़ा पूज्य था। लेकिन आज हम नहीं सोच सकते इस भाषा में। आदमी संवेदनहीन हो सकता है अगर व्याख्या उसे ऐसी मिल जाए।

गरीब के प्रति हम संवेदनहीन हो गए हैं, गरीबी के प्रति भी संवेदनहीन हो गए हैं। और जब पिछले जन्मों का कर्म का फल है, तो अब कुछ भी नहीं किया जा सकता, गरीबी को स्वीकार ही करना होगा--एक। उस व्याख्या में एक दूसरी व्याख्या भी सम्मिलित थी कि गरीबी प्रत्येक व्यक्ति की निजी जिम्मेवारी है--इंडिविजुअल रिस्पांसिबिलिटी है। अगर मैंने बुरे कर्म किए हैं तो मैं गरीब हूं, और अच्छे कर्म किए हैं तो मैं अमीर हूं। गरीबी और अमीरी से समाज का कोई संबंध नहीं है, व्यक्ति का सीधा संबंध है। यह व्याख्या भी बड़ी महंगी पड़ी। क्योंकि वस्तुतः अमीरी और गरीबी सामाजिक संदर्भ में अर्थ रखती है। कोई व्यक्ति अकेला न अमीर हो सकता है, न गरीब हो सकता है। समाज की व्यवस्था में कोई अमीर होता है और कोई गरीब होता है। गरीबी और अमीरी सामूहिक दायित्व है--सोशल रिस्पांसिबिलिटी है। यह खयाल ही नहीं पैदा हुआ, क्योंकि हमने व्यक्ति को जिम्मेवार ठहरा दिया था। इसलिए हम पांच हजार साल गरीब रहे। लेकिन ये व्याख्याएं अब भी हमारे मन में चलती हैं। अब भी हमारे मन इनसे घिरे हैं, अब भी हमारे मन इनसे मुक्त नहीं हो गए हैं। यह ध्यान रखना जरूरी है कि अगर गरीबी को तोड़ना हो तो ये व्याख्याओं में हमें आग लगा देनी पड़ेगी। यह चिंतन बदलना पड़ेगा।

गरीबी हमारा सामाजिक दायित्व है। लेकिन इतने से ही गरीबी मिट न जाएगी। इतने से सिर्फ गरीबी को मिटाने की सुविधा पैदा होगी। यह हमारी पुरानी आदत कि गरीबी को या तो पिछले जन्मों पर छोड़ो, या व्यक्ति के कर्मों पर छोड़ो, या भाग्य पर, या भगवान पर--हमें और भी खतरों में ले गई। फिर हमने... दूसरे पर छोड़ने की आदत से हमने कहा कि अंग्रेजों ने हमें लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं। अंग्रेजों के लूटने की वजह से थोड़ी हमें परेशानी हुई है, लेकिन उस वजह से हम गरीब नहीं हैं। अंग्रेजों के लूटने के पहले भी हम गरीब थे। और अगर हमने ऐसा सोचा कि अंग्रेजों ने लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं तो फिर हमने गरीबी को ठहरा लिया कि अब क्या कर सकते हैं? लुट ही गए हैं, गरीब रहना ही पड़ेगा। नहीं, मूल कारण खोजने की हमारी प्रवृत्ति नहीं है। फिर अभी एक नई बात पैदा हुई है कि पूंजीपति शोषण कर रहा है, इसलिए हम गरीब हैं, यह बात भी बहुत खतरनाक और झूठी है। पूंजीपति शोषण नहीं कर रहा था तो भी हम गरीब थे। और अगर आज पूंजीपति के पास जितना पैसा है वह बांट दिया जाए तो देश अमीर नहीं हो जाएगा, यह भी खयाल में रख लेना जरूरी है।

मुझे एक घटना याद आती है, एक अमरीकन अरबपति रथचाइल्ड से एक साम्यवादी विचारक मिलने गया और उसने रथचाइल्ड को कहा कि तुम्हारी वजह से मुल्क गरीब है, हजारों लोग गरीब हैं। तो रथचाइल्ड ने कागज उठाया, कलम उठाई, कुछ हिसाब लगाया और आधा डालर उस साम्यवादी विचारक को दे दिया और कहा, यह ले जाओ। उसने कहा, क्या मतलब आपका? इससे क्या मतलब--रथचाइल्ड ने कहाः जिनको और मांगना हो वे आ जाएं। मेरे पास जितनी संपत्ति है अगर मैं उसमें सारी दुनिया की आबादी का भाग दूं तो आधा-आधा डालर एक-एक आदमी के जिम्मे पड़ता है। यह मैं बांटे देता हूं। और जिसको भी मांगना हो वह ले जाए। लेकिन क्या तुम सोचते हो, दुनिया अमीर हो जाएगी?

अगर आज हिंदुस्तान में दस पूंजीपतियों की सम्पत्ति को बांट दिया जाए तो क्या आप सोचते हैं यह देश समृद्ध हो जाएगा? इंदिराजी और उनके साथी इसी भ्रम में पड़े हैं कि अमीरों को बांट देने से कोई देश की

गरीबी मिट जाएगी। हां, गरीब का क्रोध पूरा हो जाएगा, लेकिन क्रोध के पूरे होने से गरीबी नहीं मिट सकती। गरीब की शत्रुता पूरी हो जाएगी, गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जाएगी, लेकिन गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जाने से कोई गरीबी नहीं मिट जा सकती है। गरीब के कारण गहरे हैं, और अगर हम न समझ पाए तो हम एक बहुत बड़े खतरे की हालत में खड़े हैं। हमने पुरानी व्याख्या के कारण बहुत परेशानी उठाई। हमारी नई व्याख्या भी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। अगर हमने यह समझ लिया कि कुछ पूंजीपतियों के कारण देश गरीब है और हमने उनको बांटने की कोशिश की तो हम सिर्फ गरीबी को बांट लेंगे, और हम कुछ भी न कर पाएंगे। अमीरी बांटने के लिए देश के पास है ही नहीं। धन भी तो चाहिए न बांटने के लिए। समाजवाद क्या बांट सकता है? धन हो तो बांट सकता है। समाजवाद गरीबी को बांटेगा तो क्या परिणाम हो सकता है? पूंजीपति जिम्मेवार है, इस भाषा में अगर गरीब ने सोचा तो गरीबी मिटने वाली नहीं है। फिर वह मूल कारण पर नहीं जा रहा है। विनोबा ने वैसी भूल की है। वह गांव-गांव गए और गरीबों से जमीन मांग ली और जमीन देने वाला भी गरीब हो गया। पांच एकड़ थी, उसने दो एकड़ दान कर दी, उसके पास तीन ही एकड़ बची।

देश इतना गरीब है कि बांटने की बात अगर हमने की तो सिर्फ गरीबी बंटेगी। अमीरी होना चाहिए न बांटने के लिए! घर में कुछ बांटने को हो तभी तो बांट सकते हैं। घर में बांटने को ही न हो तो क्या बांटिएगा? देश की गरीबी के कारण और भी गहरे हैं। लेकिन क्रोध गरीब का है--स्वाभाविक है। और इसलिए समाजवाद की बात गरीब को बड़ी अर्थपूर्ण मालूम होती है।

मैं खुद समाजवादी हूं लेकिन मैं समझता हूं कि अभी पचास साल तक इस देश को समाजवादी बनाने की चेष्टा अत्यंत अप्रौढ़, चाइल्डिश और बचकानी है। पचास साल तक इस देश को समाजवादी बनाने की कोशिश ऐसी ही है जैसे मां के पेट से पांच महीने के बच्चे को बाहर निकाल लिया जाए। वह बच्चा भी मरेगा और उस मां के बचने की उम्मीद भी बहुत कम है।

जब तक कोई देश ठीक से संपत्ति पैदा न कर ले तब तक समाजवाद सपना है। सपने देखने बहुत अच्छे हैं लेकिन उनको रूपांतरित करना जिंदगी में बहुत कठिन है।

अगर समाजवाद के लिए कोई भी रास्ता जाता है, निश्चित ही मास्को तक पहुंचना पड़ेगा। लेकिन मैं बड़ी उलटी बात आपसे कहना चाहता हूं, मास्को तक जो निकटतम रास्ता है वह वाया वाशिंगटन जाता है, और कोई रास्ता ही नहीं जाता। वह जो वाशिंगटन में वॉल स्ट्रीट है उसके ही आखिरी छोर पर क्रेमलिन के लाल सितारे चमक सकते हैं। और कोई रास्ता नहीं है। अगर हमने वाशिंगटन से बच कर जाने की कोशिश की तो यह देश आगे भी गरीब रह जाएगा, और ज्यादा गरीब हो सकता है। पूंजी होनी चाहिए, तब पूंजी बांटी जा सकती है। लेकिन हमारी पुरानी आदत है, किसी दूसरे को जिम्मेवार ठहरा देने की--भाग्य को, पिछले जन्म को, भगवान को, ब्रिट्रिश साम्राज्य को, अब पूंजीपति को। लेकिन हम अपनी जीवन व्यवस्था के बुनियादी आधारों पर सोचने की तैयारी नहीं दिखाते हैं जिनकी वजह से हम गरीब हैं। मैं उन कारणों के संबंध में कुछ बात आपसे कहना चाहता हूं।

इस समय चूंकि बात बहुत गरम है, लेकिन पोलिटिकल स्टंट से ज्यादा नहीं है। इस समय बात बहुत गरम है। इस समय समाजवाद की बात बड़े जोर से चर्चा में है, लेकिन समाजवाद की बात से समाजवाद नहीं आता। समाजवाद आसमान से नहीं उतरेगा, समाजवाद तो हमें विकसित करना होगा। और हम, जो कि संपत्ति ही पैदा नहीं कर पाए, पूंजी ही पैदा नहीं कर पाए, कैसे समाजवाद को ला सकते हैं? पूंजीवाद समाजवाद का पहला चरण है। यह देश अभी ठीक अर्थों में पूंजीवादी भी नहीं है।

ध्यान रहे, समाजवाद पूंजीवाद से उलटी व्यवस्था नहीं है। समाजवाद पूंजीवाद का चरम विकास है। पूंजीवाद जब पूरी तरह विकसित होता है तो समाजवाद में रूपांतरित हो जाता है। जब पूंजी इतनी अतिरेक हो जाती है कि उसे व्यक्ति के पास रखने का कोई अर्थ नहीं होता तभी वह समाज में ओवरफ्लो करती है। तभी वह समाज में बंट सकती है। लेकिन जब तक पूंजी बहुत कम है तब तक समाजवाद सुसाइडल, आत्मघाती है, अपने हाथ से मर जाने का उपाय है।

लेकिन यह कठिन है, आज समझना। आज बहुत कठिन है, मुश्किल है, क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि पूंजीपति को बांट दो तो सब ठीक हो जाएगा। लेकिन पूंजीपति को बांटने से क्या ठीक हो जाएगा? पूंजीपति को बांटने से कुछ भी ठीक नहीं हो सकता। सिर्फ पूंजी को पैदा करने की जो व्यवस्था थी वह भी टूट जाएगी। पूंजी को पैदा करने का जो इनसेंटिव था, जो प्रेरणा थी, वह भी टूट जाएगी। और हमारे जैसे आलसी, प्रमाद से भरे हुए भाग्यवादी देश में अगर पूंजी को पैदा करने की प्रेरणा भी टूट जाए तो शायद हम अपने इतिहास का सबसे दुर्दिन का दिन देखना शुरू कर देंगे। लेकिन अनुभव हमें कुछ भी नहीं सिखाता। जिन-जिन व्यवस्थाओं को सरकार ने अपने हाथ में लिया है, समाजवाद के नाम पर, वे सारी व्यवस्थाएं असफल हैं। सरकार से कुछ भी चलता नहीं, क्योंकि चलाना तो आदमियों से पड़ेगा।

मैं जिस प्रदेश से हूं उस प्रदेश की सारी रोडवेज को--मोटर सर्विसेस को, बसेस को सरकार ने ले लिया। अभी उनकी कमेटी हुई, उनकी कमेटी के चेयरमैन मुझे मिलने आए, उन्होंने कहा कि हमें तीस लाख साल का, प्रति वर्ष घाटा हो रहा है। एक आदमी के पास बस हो तो वह अमीर हो जाता है--इतना कमा लेता है। सारे प्रदेश की बस उनके पास हैं और तीस लाख साल का उनको घाटा हो रहा है। जहां-जहां सरकार ने राष्ट्रीयकरण के नाम पर जो-जो चीज अपने हाथ में ली है वहां-वहां नुकसान है। अगर पूरे देश की संपत्ति का उत्पादन राज्य के हाथ में चला जाए समाजवाद के नाम पर, तो यह देश आने वाले बीस वर्षों में और भी गरीब होगा, अमीर नहीं होगा। क्योंकि सिर्फ संपत्ति के उत्पादन के साधन हाथ में ले लेने से राज्य का कुछ भी नहीं हो सकता। इस देश के मानस को बदलना जरूरी है। वह मानस गरीब होने की पूरी तैयारी लिए बैठा है। उस मानस के संबंध में मैं कुछ बात करना चाहता हूं।

पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि समृद्ध होने के लिए एक बहुत और तरह के विचार की जरूरत है जो हमारे मन में ही नहीं है।

एक छोटी सी कहानी से मैं समझाऊं। कनफ्यूशियस ने लिखा है कि वह एक गांव से गुजरता था और उस गांव में उसने एक माली को अपने बगीचे में पानी सींचते देखा। बूढ़ा माली है, उसका जवान बेटा है। वे दोनों बैलों और घोड़ों की तरह मोट में जुते हैं और कुएं से पानी को निकाल रहे हैं। कनफ्यूशियस हैरान हुआ। क्योंकि तब तक यह ईजाद हो गई थी कि आदमी की जगह घोड़े या बैल जोते जा सकते थे। कनफ्यूशियस बूढ़े के पास गया और उसने कहा, मालूम होता है, तुम्हें पता नहीं है। अब तुम क्यों जुते हो चौबीस घंटे? इस मोट की जगह घोड़े और बैल जोते जा सकते हैं। उस बूढ़े ने कहाः धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। कनफ्यूशियस ने कहाः क्यों? उसने कहाः पीछे आना। बेटे के चले जाने के बाद उस बूढ़े ने कहाः अब बोलो। मुझे पता है कि घोड़े जोते जा सकते हैं। लेकिन घोड़ा जोतने से मेरा जवान लड़का विश्राम करने लगेगा, और श्रम जीवन की सबसे कीमती चीज है। मैं नहीं चाहता कि जवान लड़का विश्राम करने लगे। श्रम ही तो सब कुछ है, इसलिए मैं घोड़े नहीं लाना चाहता। मुझे यह भी पता है कि मशीन भी निकल गई है एक छोटी, जिससे हम पानी बाहर फेंक सकते हैं, लेकिन वह भी मैं नहीं लाना चाहता क्योंकि लड़का विश्राम करने लगेगा। और जवानी में विश्राम बहुत बुरा

है। कनफ्यूशियस को भी यह बात जंची है और उसने अपनी किताब में कहा है कि मुझे वह बूढ़ा बहुत ठीक मालूम पड़ा।

हिंदुस्तान का मन हजारों साल से इस बात को ठीक समझ रहा है। वह यह समझ रहा है कि श्रम करना कोई बहुत ऊंची बात है! इधर पंडित नेहरू ने एक नारा दिया थाः आराम हराम है। लेकिन कोई पूछे कि आदमी आराम के लिए जीता है या किसी और चीज के लिए जीता है? श्रम भी आदमी इसलिए करता है कि आराम को उपलब्ध हो सके। मेहनत भी इसलिए करता है कि विश्राम कर सके। विश्राम जीवन का लक्ष्य है, श्रम नहीं। श्रम केवल साधन है।

भारत पांच हजार वर्षों से श्रम को साध्य बनाए हुए है, साधन नहीं। वह कहता है, श्रम जीवन का लक्ष्य है। विनोबा भी वही कहते हैं, गांधी भी वही कहते हैं, नेहरू भी वही कहते हैं। श्रम जीवन का लक्ष्य है। श्रम जीवन का लक्ष्य ही नहीं है। जीवन का लक्ष्य विश्राम है। जीवन का लक्ष्य आराम है। और आराम हराम नहीं है क्योंकि लक्ष्य अगर हराम हो जाएगा तो पूरी जिंदगी हराम हो जाएगी। लेकिन आराम पाने के लिए श्रम करना पड़ता है। श्रम साधन है और जिसे आराम पाना हो उसे श्रम करना पड़ता है। लेकिन आराम के लक्ष्य को हटाया नहीं जा सकता। बड़े मजे की बात है, लेकिन हिंदुस्तान श्रम को बड़ा आदर देता है।

श्रम से संपत्ति पैदा नहीं होती। यह आपको उलटी बात मालूम पड़ेगी। हमें तो लगता है, श्रम से ही संपत्ति पैदा होती है। नहीं, जो कौम विश्राम खोजने की कोशिश करती है वह श्रम से बचने की कोशिश में टेक्नालॉजी का विकास करती है। जो कौम श्रम से बचने की कोशिश करती है वह टेक्नालॉजी का विकास करती है। टेक्नालॉजी सब्स्टीट्यूट है श्रम का। अगर मुझे आपके घर तक आना है तो मैं पैदल आ सकता हूं। पदयात्रा करूं तो आपको भी अच्छा लगेगा। अखबार भी खबर छापेंगे कि पदयात्री है। लेकिन मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए साइकिल को ईजाद करता हूं। मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए कार ईजाद करता हूं। मै पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए हवाई जहाज ईजाद करता हूं।

जो कौम श्रम से बचना चाहती है वह टेक्नालॉजी को विकसित करती है। जो कौम श्रम का आदर करती है वह टेक्नालॉजी को विकसित नहीं करती। टेक्नालॉजी के अतिरिक्त धन कभी पैदा नहीं होता। धन होता है टेक्नीक से पैदा, श्रम से नहीं। इसलिए जो कौम जितना विश्राम की आकांक्षा करती है उतने टेक्नीक को विकसित करती चली जाती है। आप हैरान होंगे, दुनिया का सारा विकास उन लोगों ने किया है जो विश्राम के आकांक्षी हैं। दुनिया के सारे आविष्कार उन्होंने किए हैं जो विश्राम के आकांक्षी हैं। आपने यह कहावत सुनी होगी कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। वह कहावत बहुत सच नहीं है। विश्राम की आकांक्षा आविष्कार की जननी है--विश्राम की आकांक्षा। इसलिए बुद्धिमान आदमी सब तरफ से विश्राम खोजता है।

शायद आपने सुना हो, एडीसन ने कोई एक हजार आविष्कार किए। दुनिया में किसी एक आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किए। एडीसन एक फैक्ट्री में काम करता था प्रारंभ में। और उसका काम इतना था केवल कि जब कोई फोन आए तो वह अपने मालिक को खबर कर दे। रात भर उसे जगना पड़ता था। किसी रात फोन आता भी था, किसी रात नहीं भी आता था। रात भर जगना पड़ता था। तो उसने एक तरकीब विकसित की रात भर सोने के लिए। उसने फोन के साथ घंटी जोड़ी, इतनी तेज कि उसकी नींद खुल जाए। और वह मालिक को खबर कर सके। फिर वह निश्चिंत सोने लगा। वह निश्चिंत सोने लगा। महीनों बीत गए, जब कभी जोर से घंटी बजती वह उठ जाता और मालिक को खबर कर देता--ऐसे वह सोता। एक दिन उसकी घंटी बिगड़ गई। फोन आया और वह सोया रहा। मालिक पता लगाने आया कि क्या बात है, क्योंकि मालिक ने अपनी पत्नी को ही

फोन किया था, खबर करनी थी। आया तो वह मजे से सो रहा था। उसने उसे नौकरी से निकाल दिया--एडीसन को। उसने कहा कि तुम आलसी हो। एडीसन ने कहा कि मेरे आलस्य के कारण ही मै घंटी का आविष्कार कर सका। लेकिन नौकरी से निकाल दिया, वह भी सौभाग्य सिद्ध हुआ। क्योंकि फिर वह हजार आविष्कार कर सका। और एडीसन ने लिखा है कि विश्राम की आकांक्षा से ही आविष्कार विकसित होते हैं--निश्चित ही!

जो कौम श्रम करने को बहुत आदर देगी--अब यह बड़ी उलटी बात दिखाई पड़ेगी, लेकिन जिंदगी बड़ी उलटी है। जो कौम श्रम को बहुत आदर देगी वह आलसी हो जाएगी और विश्राम को उपलब्ध न होगी। आलसी आदमी विश्राम को कभी उपलब्ध नहीं होता। विश्राम को तो वह उपलब्ध होता है जो ठीक से श्रम कर लेता है। आलसी कभी विश्राम को उपलब्ध नहीं होता।

जो कौम श्रम पर जोर देगी--श्रम मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा नहीं है, आकांक्षा तो विश्राम की है। श्रम हम करते ही इसलिए हैं कि सांझ विश्राम कर सकें। और इसलिए निरंतर खोज होती चली जाती है। अब आटोमेटिक यंत्र पश्चिम ने खोज लिया है--अब वह सारे आदमियों को सब श्रम से मुक्त कर देगा। क्या आप सोचते हैं कि आदमी श्रम से मुक्त हो जाएगा? नहीं! आदमी श्रम से मुक्त हो जाएगा, लेकिन चौबीस घंटे विश्राम में बैठे रहना अर्थपूर्ण नहीं है। आदमी कुछ न कुछ करेगा। श्रम, क्रीड़ा और खेल और लीला हो जाएगी।

दुनिया की सारी संस्कृति उन लोगों ने विकसित की है जो लेजर में और विश्राम में थे। ताजमहल के सपने उन्होंने देखे हैं जो विश्राम में थे। और पिरामिड भी उन्होंने ही सोचे हैं जो विश्राम में थे। और संगीत, और साहित्य, और कला, और मूर्तिया, ं और चित्र, और दर्शन, सब विश्राम से पैदा हुआ है। सारी संस्कृति विश्राम से जन्मी है, लेजर क्लास से पैदा हुई है। अगर हम सारे जगत को किसी दिन विश्राम में ला सकें तो संस्कृति का इतना एक्सप्लोजन होगा कि पिकासो को ढूंढने कोई पेरिस जाने की जरूरत न होगी, वह एक-एक गांव में भी मिल सकता है। और तानसेन को पैदा करने के लिए अकबर का दरबार जरूरी न होगा। घर-घर में एक-एक बेटा तानसेन हो सकता है। लेकिन इतने लेजर, इतने विश्राम की जरूरत है, जिसमें यह संस्कृति विकसित हो सके। लेकिन हमारा देश... हमारा देश श्रम को आदर दे रहा है।

श्रम को आदर देने के कारण टेक्नालॉजी विकसित नहीं हो पाई। टेक्नालॉजी विकसित न होने के कारण समृद्धि और संपत्ति पैदा नहीं हुई। संपत्ति लक्ष्मी की पूजा से पैदा नहीं होती। संपत्ति टेक्नालॉजी से पैदा होती है। आज जो देश समृद्ध हैं--अमरीका आज समृद्ध है, और पृथ्वी पर पहला देश ठीक अर्थों में समृद्ध है। रूस अभी भी गरीब है, यह ध्यान रहे। रूस अभी भी समृद्ध नहीं है। रूस की समृद्धि जो थोड़ी-बहुत है, वह भी बहुत महंगी है। और बामुश्किल पाई गई है। और रूस में कोई चालीस वर्षों में एक करोड़ लोगों की हत्या करके किसी तरह काम करवाया गया है। पूरा रूस एक कनसनट्रेशन कैंप बन गया, तब कहीं काम लिया जा सका है। आदमी से जबरदस्ती पीछे बंदूक के कुंदे पर काम लिया जा सका है। कहीं फिर भी रूस समृद्ध नहीं हो सका। आज भी रूस की बुनियादी हालत गरीबी की है। आज भी अमरीकी अर्थों में रूस समृद्ध नहीं है। अमरीका अकेला मुल्क है जो समृद्ध हो सका। कैसे हो सका है?

अमरीका समृद्ध हो सका है तकनीक के अत्याधुनिक विकास से। तकनीक ने श्रम को बदल दिया। लेकिन हम यहां उलटी प्रक्रिया में लगे हैं। हम कहते हैं, थोड़ा बहुत टेक्नीक आ गया हो तो उसको भी श्रम से बदल दो। अगर टेक्सटाइल मिल चल रही है तो उसको हटाओ और चर्खे चलाओ। हम उलटे... हम सिर के बल शीर्षासन करने के ऐसे आदी हो गए हैं कि हम सीधे पैर के बल खड़ा नहीं होना चाहते। हम कहते हैं, चर्खा चलाना बहुत ऊंची बात है। तो नेता रोज सुबह घर के सामने बैठ कर चरखा चला लेता है धूप में कि जनता देख ले। राजघाट

पर गांधीजी के मरने के दिन बैठ कर चर्खा चला लेता है कि कैमरामैन फोटो उतार ले। चर्खा चलाने में इतना क्या आदर है?

चर्खा अगर चलेगा तो मुल्क गरीब होगा। चर्खे से मुल्क अमीर नहीं हो सकते। चर्खा तो बहुत दिन से चल रहा है। पांच-छह हजार साल से हम चर्खा चला रहे हैं। कौन सी अमीरी आई? अमीरी टेक्नीक से आती है क्योंकि टेक्नीक हजार आदमी का काम अकेला कर देता है। लाख आदमी का काम अकेला कर देता है। टेक्नीक हमारा बढ़ा हुआ हाथ है। टेक्नीक हमारा हजार गुना हो गया श्रम है और हम विश्राम में हो जाते हैं। और विश्राम से बैठा आदमी नये आविष्कार कर पाता है। और एक चक्र शुरू हो जाता है, जिससे समृद्धि आती है। इस देश में वह चक्र आज तक शुरू नहीं हो पाया। और आज तक इस देश के समझदार लोग उलटी बातें समझा रहे हैं।

गांधी जी थर्ड क्लास में चलते हैं, किसी ने पूछा कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं? उन्होंने कहाः चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। फोर्थ क्लास की बड़ी जरूरत है। लेकिन फोर्थ में चलेंगे और कोई पूछेगा, फोर्थ में क्यों चलते हैं? तो वे कहेंगे, फिफ्थ क्लास नहीं है। इसका अंत नरक में होगा, इसके पहले नहीं हो सकता। जब तक नरक में न पहुंच जाएं तब तक तृप्ति न होगी। लेकिन जो देश इस भाषा में सोचेगा--पीछे लौटने की, और नीचे गिरने की, और नीचे गिरने की, वह आगे कैसे बढ़ेगा?

मैंने सुना है कि गांधी जी जेल में थे और वल्लभभाई उनके साथ थे। गांधी जी दस छुहारे फुला कर सुबह नाश्ता करते थे। वल्लभभाई ने सोचा कि बूढ़ा रोज-रोज दुबला होता चला जाता है। दस छुहारे से क्या होगा! उन्होंने बारह छुहारे फुला दिए। कौन गिनती करेगा। लेकिन गांधी जी गिनती में होशियार थे। रात जब सब काम बन्द हो जाता, तो कौड़ी-कौड़ी का हिसाब... वह आश्रम में दो बजे रात तक करते रहते। सब हिसाब करके फिर वह सोते। सुबह उठते से ही उन्होंने देखा कि मालूम होता है छुहारे ज्यादा हैं। गिनती की, बारह निकले। तो उन्होंने वल्लभभाई पटेल को कहा कि किसने बारह डाले? यह तो भारी अपराध हो गया। वल्लभभाई ने कहा कि मैंने सोचा कि थोड़ा ज्यादा आपके शरीर में चला जाए तो ठीक। शरीर की बड़ी जरूरत है--आपकी। लेकिन हम इस मुल्क में मानते ही नहीं कि शरीर की कोई जरूरत है। हम तो कहते हैं, सिर्फ आत्मा से रहना काफी है। हमारा अगर वश चले हम सब भूत-प्रेत हो जाएं--वैसे हो ही गए हैं--शरीर की कोई जरूरत ही नहीं है। छुहारे की शरीर को जरूरत है? गांधीजी शुद्ध आत्मा! शरीर की जरूरत क्या है? वल्लभभाई ने कहाः फिर दस और बारह में फर्क ही क्या है? गांधीजी ने यह बात पकड़ ली। गांधीजी ने कहा, दस और बारह में कोई फर्क नहीं तो कल से मैं आठ ही खा लूंगा। क्योंकि फिर दस और आठ में कोई फर्क नहीं है।

मैं मानता हूं कि वल्लभभाई का दस और बारह में कोई फर्क नहीं है यह मुल्क को विकास की तरफ ले जाएगा और गांधी का दस और आठ में कोई फर्क नहीं है, यह मुल्क को पतन की तरफ ले जाएगा। वल्लभभाई उतने बड़े आदमी नहीं हैं, लेकिन सहज और सीधे और सादे आदमी हैं। दस से बारह पर जाना चाहते हैं, थर्ड क्लास से सेकेंड क्लास में जाना चाहते हैं। गांधी जी बड़े आदमी हैं, लेकिन बड़े आदमी खतरनाक हो सकते हैं क्योंकि आदमी को बड़ा होने के लिए अक्सर सामान्य आदमी से उलटा होना पड़ता है। जब तक वह उलटा खड़ा न हो, कोई उसको बड़ा नहीं मानता। थर्ड क्लास से फोर्थ क्लास में जाए तभी जनता कहेगी, हां, यह है महात्मा। दो चपाती खाए, एक चपाती खाए तो और बड़ा महात्मा। बिल्कुल न खाए तो और बड़ा महात्मा है। असल में जिंदा रहते हुए महात्मा में थोड़ी कमी ही होती है। मर कर ही महात्मा पूरा हो पाता है। इसलिए मरे हुए महात्माओं की हम सदा पूजा करते हैं। जिंदा महात्मा में थोड़ी भूल-चूक दिख ही जाती है।

यह हमारा सोचना बहुत महंगा और खतरनाक है। सिकुड़ने का सोचना है, संकोच का, दबने का, नीचे उतरने का। नहीं, टेक्नालॉजी को श्रम में नहीं बदलना है, श्रम को टेक्नालॉजी में बदलना है तो देश में अमीरी पैदा होगी। खेत जितनी संपति हाथ से पैदा कर सकते थे, कर चुके। और खेत भी थक गए बुरी तरह और हाथ भी थक गए बहुत बहुत बुरी तरह। अब खेत पर हाथ की जगह मशीन चाहिए। लेकिन मशीन हमें भौतिकवादी मालूम पड़ती है। मशीन को उपयोग में लाने वाले लोग मैटीरियलिस्ट मालूम पड़ते हैं। हम अध्यात्मवादी लोग हैं। हम मशीन का कैसे उपयोग कर सकते हैं? और अगर करेंगे भी तो बेईमानी से करेंगे। ईमानदारी से न करेंगे।

अब यह मैं माइक का उपयोग कर रहा हूं। एक जैन आचार्य हैं तुलसी, अभी तक माइक का उपयोग नहीं करते थे क्योंकि खयाल था कि आवाज जोर से पैदा होगी तो कीटाणु मर जाएंगे। लेकिन अब सच तो यह है कि अगर कीटाणु मरते हों तो थोड़ी आवाज में भी मरते होंगे। मुंह पर पट्टी बांधने में भी मरते होंगे, थोड़े कम मरते होंगे। असल में अगर आवाज से कोई मरता हो तो ओंठ सी लेने चाहिए। लेकिन उनको दिखाई पड़ा कि मुंह पर पट्टी बांध कर दस--पांच लोग ही मुश्किल से सुन पाते हैं। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो, इसका भी रस नहीं छूटता। तो अब एक बेईमानी की तरकीब निकाली। अभी बैंगलोर में माइक से बोले तो लोगों ने कहा कि आप और माइक से बोल रहे हैं? उन्होंने कहाः मैं माइक से नहीं बोल रहा, मैं तो सिर्फ बोल रहा हूं। किन्हीं लोगों ने माइक सामने रख दिया तो मैं क्या करूं? श्रावक सुनना चाहते हैं, वह पाप उनके जिम्मे। उन्होंने माइक रखा। मैं तो अपनी जगह बैठ कर बोल रहा हूं। न तो मैं यह कहता कि माइक रखो, न मैं यह कहता कि माइक मत रखो।

अब यह बेईमान तरकीबें हैं मशीन का उपयोग करने की। यह ज्यादा डिसआनेस्ट मीन्स हैं। अगर मशीन का उपयोग करना है तो सीधा करो। उसमें पाखंड और बेईमानी की क्या जरूरत है? नहीं, लेकिन यह तरकीब निकालनी पड़ेगी क्योंकि मशीन के उपयोग के साथ हमें खयाल है कि भौतिकवाद है। यह मैटीरियलिज्म है। यह देश भौतिकवाद का विरोधी रहा है। समृद्ध नहीं हो सकता। अगर किसी देश को समृद्ध होना है, उसे ठीक अर्थों में भौतिकवादी होना जरूरी है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि भौतिकवादी होने से कोई गैर-अध्यात्मवादी हो जाता है।

यह भी एक भ्रांत तर्क है। अगर एक मंदिर हमें बनाना हो तो मंदिर का सोने का शिखर अकेला नहीं रखा जा सकता। नीचे नींव में पत्थर भी भरने पड़ते हैं। लेकिन अगर कोई यह समझ ले कि हम नींव में पत्थर न भरेंगे, हम तो सिर्फ स्वर्ण-कलश चढ़ाएंगे, तो मंदिर कभी न बनेगा। स्वर्ण-कलश में और नींव के गंदे और कुरूप पत्थर में कोई भेद नहीं है। वह नींव का पत्थर ही स्वर्ण के कलश को सम्हालता है। अध्यात्म के कलश अगर देश के मंदिर पर चढ़ाने हों तो नींव में भौतिकवाद के पत्थर बिछाने पड़ेंगे। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। देश का मंदिर अगर बनाना है ठीक तो नींव भौतिकवाद की होगी और कलश अध्यात्म का। अध्यात्म और भौतिकवाद का विरोध बिल्कुल झूठा है। वैसा विरोध कहीं भी नहीं है। आत्मा और शरीर का विरोध झूठा है, परमात्मा और प्रकृति का विरोध झूठा है। लेकिन इस देश को इसी डुआलिज्म में समझाया जा रहा है। यह बड़े मजे की बात है। हमें यही समझाया जा रहा है कि शरीर को मारो, अगर आत्मा को पाना है। दीन-हीन बनो, दुखी बनो, दरिद्र बनो, भूखे रहो, अगर आत्मा को पाना है।

मैं नहीं सोचता कि स्वस्थ शरीर हुए बिना कोई आत्मा को उपलब्ध हो सकता है। मैं नहीं सोचता कि जीवन की सामान्य जरूरतें पूरी हुए बिना कोई आत्मा की तरफ यात्रा कर सकता है। यह असंभव है। यह ऐसा ही है जैसे नींव के पत्थर के बिना कोई स्वर्ण-कलश चढ़ाने की कोशिश कर रहा हो। नहीं, भौतिक और अध्यात्म विरोधी नहीं हैं। अगर कोई कहे कि वीणा को हटाओ, हम तो सिर्फ संगीत को प्रेम करते हैं--सिर्फ संगीत चाहिए,

वीणा तो भौतिक है! वीणा तो भौतिक है ही, वीणा को हटाओ, सिर्फ संगीत चाहिए--तो ध्यान रहे, वीणा तो बिना संगीत के हो सकती है, लेकिन संगीत बिना वीणा के नहीं हो सकता। शरीर तो बिना आत्मा के हो सकता है कि आत्मा का हमें कोई पता ही न हो तो हम सिर्फ शरीर में जीते रहें, लेकिन अकेली आत्मा बिना शरीर के नहीं हो सकती।

यह ध्यान रहे, निकृष्ट के बिना श्रेष्ठ नहीं हो सकता लेकिन श्रेष्ठ के बिना निकृष्ट हो सकता है। यह बड़ी अदभुत बात है, लेकिन जिंदगी ऐसी है। यहां नींव हो सकती है बिना कलश के लेकिन कलश बिना नींव के नहीं हो सकता। यहां जड़ें हो सकती हैं बिना वृक्ष के, लेकिन वृक्ष बिना जड़ों के नही हो सकता। जड़ें कुरूप है, माना, लेकिन जड़ों में रस है जो वृक्षों के फूलों तक पहुंचता है। यह देश जड़ों को इनकार कर रहा है और कहता है, हम सिर्फ फूलों को प्रेम करेंगे। यह प्रेम... यह प्रेम असंभव है, यह प्रेम बहुत मंहगा पड़ गया है। पांच हजार साल हमने फूलों को प्रेम करने की कोशिश की--जड़ों को इनकार करके। आत्मा को पाने की कोशिश की शरीर की दुश्मनी करके। प्रकृति को निकृष्ट कह कर, प्रकृति को असार कह कर परमात्मा का मंदिर खोजा, वह हमें नहीं मिला। बल्कि फूल तो मिले ही नहीं, जड़ें भी कुम्हला गईं और सूख गईं, क्योंकि जड़ों को हमने पानी न दिया। जब हम जड़ों के दुश्मन थे तो हम पानी कैसे देते?

समृद्धि पैदा होगी भौतिकवाद के सहज स्वीकार से। यह देश जब तक अपने थोथे अध्यात्मवाद से भरा है--थोथा अध्यात्मवाद मैं उसे कहता हूं जो भौतिकवाद का विरोधी है। ठीक, राइट स्प्रिचुअलिज्म उसे कहता हूं जो भौतिकवाद को समाहित कर लेता है। जो कहता है--आए, भौतिक भी हममें समा जाए। भौतिक हमारा कुछ न बिगाड़ पाएगा। लेकिन यह हमारी अब तक की वृत्ति रही है।

हम समृद्ध कैसे हों? हमने दरिद्रता के सब उपाय किए और हम सफल हो गए। हमने समृद्धि का कोई उपाय ही नहीं किया क्योंकि हमने मूल आधार न रखा। एक बात--भौतिकवाद का सम्यक स्वीकार चाहिए। आने वाले भारत की नई पीढ़ी को भौतिकवाद को आत्मसात करना होगा--यह कह कर कि पश्चिम भौतिकवादी है, इनकार करने से नहीं चलेगा, क्योंकि जो पश्चिम भौतिकवादी है उसी के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं, भीख मांगनी पड़ती है। और यह बहुत अशोभन है कि अध्यात्मवादी भौतिकवादियों के सामने भीख मांगे। लेकिन हम बीस साल से भीख मांग रहे हैं। और आगे भी, अभी कोई उपाय नहीं दिखता कि भीख मांगना हमें बंद करने की स्थिति में लाए। भीख हमें मांगनी ही पड़ेगी, क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं, हम शुद्ध आत्मा में जीना चाहते हैं। तो कौन गेहूं पैदा करे, कौन मशीनें लाए, कौन टेक्नालॉजी पैदा करे? नहीं, वह हमसे नहीं होगा। वह पश्चिम करे, और हम भीख मांगें--यह हमारी पुरानी तरकीब है। पाप कोई और करे, पुण्य हम करें।

एक आदमी संन्यासी हो जाता है। वह कहता है, हम दुकान नहीं करेंगे। दुकान में पाप है। हम खेती नहीं करेंगे। खेती में पाप है। हम पैसा नहीं कमाएंगे। हम पैसा छुएंगे नहीं, छूने में पाप है। अभी दो संन्यासी मुझे मिलने आए। उनसे मैंने कहा कि आप कल सुबह आ जाएं। उन्होंने कहाः बड़ी मुश्किल होगी क्योंकि हम पैसा नहीं छूते। कोई आदमी हमारे साथ रहता है जो पैसा खीसे में रखता है, वह पैसा देता है। तो हम उस आदमी को पूछ लें, अगर वह कल सुबह आ सकता हो तो हम आ सकते हैं। मैंने कहा, बड़ा मुश्किल है। मैंने कहाः आप पैसा क्यों नहीं छूते हैं? उन्होंने कहाः पैसा छूना पाप है। और मैंने कहाः वह आदमी आपके लिए पैसा छू रहा है, तो वह किसके लिए पाप कर रहा है? नरक वह जाएगा, आप स्वर्ग चले जाएंगे?

मैं दुकान करूं तो पाप है, मैं दुकान न करूं, और दो दुकान करने वाले मुझे जिंदगी भर पालें तो पुण्य है! पाप कोई और करे, पुण्य हम करेंगे, यह हमारी पुरानी प्रवृत्ति है। पश्चिम भौतिकवादी है, पेट हमारा खाली है,

रोटी पश्चिम दे। पाप अगर होगा, नरक अगर जाएंगे तो पश्चिम के लोग जाएंगे, यह बड़े मजे की बात है। अमरीका का किसान नरक जाएगा, क्योंकि भौतिकवादी है और हम स्वर्ग जाएंगे क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं। और अमरीका का किसान हमारे लिए मेहनत करेगा। चार किसान अमरीका में मेहनत कर रहे हैं, उनमें एक किसान की मेहनत हमें मिल रही है। आज अमरीका का एक चौथाई भोजन हम ले रहे हैं, लेकिन बेशर्मी के साथ। यह हमें खुद पैदा करना पड़ेगा। लेकिन हम कैसे पैदा करेंगे? अगर भौतिकवाद की स्वीकृति नहीं है तो यह पैदा नहीं होगा।

इस देश में भौतिकवाद के अस्वीकार के कारण विज्ञान भी पैदा नहीं हो पाया। हमारी जलती हुई समस्या यह है कि हम कैसे तीव्रता से विज्ञान पैदा करें, कैसे हम साइंटिफिक हो जाएं? लेकिन हमारा सब सोचना गैर-साइंटिफिक है। हमारे चिंतन के सब आधार गैर-साइंटिफिक हैं। अगर हम सोचेंगे भी तो हम हमेशा गैर-साइंटिफिक ढंग से ही सोचेंगे। हमारे सोचने की पूरी धारा, पूरा ढांचा ऐसा है।

अब जनसंख्या बढ़ती है, वह हमारा सवाल है--आज मुल्क के सामने। हमारे विचारशील लोग, तो उनसे पूछिए जाकर कि जनसंख्या बढ़ती है तो क्या करें? वे कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो। गांधीजी कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो। विनोबाजी कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो, जनसंख्या नहीं बढ़ेगी। ब्रह्मचर्य धारण करो! और पांच हजार साल का अनुभव यह कहता है कि कितने लोगों ने ब्रह्मचर्य धारण किया? लेकिन अनुभव से हम कुछ सीखते नहीं। और कितने लोग ब्रह्मचर्य धारण कर लेंगे? वह भी हम नहीं सोचते। और खतरा तो यह है कि अगर यह चालीस करोड़ का मुल्क एकदम से ब्रह्मचर्य धारण कर ले दो-एक साल, तो हम एक-दूसरे की गर्दन घोंट डालें--इतना हमारे भीतर काम का वेग इकट्ठा हो जाए कि जिंदा रहना मुश्किल हो जाए, पूरा मुल्क पागल हो जाए वह बच्चे पैदा करने से भी महंगा पड़े--लेकिन उसका हमें कोई खयाल नहीं है!

वैज्ञानिक साधन से हमारा विरोध है। तो बर्थ-कंट्रोल से हमारा विरोध ह, ै क्योंकि वह वैज्ञानिक साधन है, सोचने का वह वैज्ञानिक ढंग है! लेकिन उससे हमारा विरोध है। हम किसी भी चीज के संबंध में वैज्ञानिक बुद्धि से नहीं सोच पाते। वैज्ञानिक बुद्धि हमारे पास नहीं है। बुद्धि वैज्ञानिक हो सकती है आज भी, उसके आधार बदलने होंगे। हमारे सोचने के आधार क्या हैं? हमारा सोचने का आधार सदा शास्त्र है।

जब भी हम सोचते हैं तो हम पहले यह पूछते हैं, गीता क्या कहती है? अब गीता को कब तक परेशान करेंगे, और कृष्ण ने आपका क्या बिगाड़ा है? पैदा हो गए आपके मुल्क में तो कोई कसूर हो गया, अपराध हो गया?

उनका पीछा कब तक करेंगे? लेकिन पहले हम गीता खोलेंगे। समस्या आज की, शास्त्र कल का; उनका मेल क्या है? लेकिन पहले शास्त्र में खोजेंगे कि शास्त्रसम्मत कोई रास्ता मिल जाए। शास्त्र में कुछ रास्ते हैं, वे हम खोज लेंगे। वे रास्ते लागू नहीं होंगे, क्योंकि यह बुद्धि जो शास्त्र में खोजती है; अवैज्ञानिक है।

वैज्ञानिक बुद्धि प्रयोग में खोजती है, अवैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र में खोजती है। प्रयोग भविष्यगामी है और शास्त्र अतीत से बंधे हैं। प्रयोग सदा भविष्य में ले जाता है, एक्सपेरीमेंट हमेशा भविष्य में ले जाता है और शास्त्र सदा अतीत में ले जाते हैं। जाना है भविष्य में और पकड़े हैं शास्त्र को, तो मुसीबत खड़ी हो गई है। जाना है पूरब और बैलगाड़ी में बैल जुते हैं पश्चिम की तरफ। बैलगाड़ी के बैल चलते हैं तो और पश्चिम में चले जाते हैं और जाना है पूरब। बहुत कठिनाई हो गई है, बहुत मुश्किल हो गई है।

शास्त्र की तरफ देखना बंद करना पड़ेगा। वैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र की तरफ नहीं देखती। बल्कि ध्यान रहे, जब से कुछ लोगों ने शास्त्र की तरफ देखना बंद किया, तभी से विज्ञान पैदा हुआ। नहीं तो विज्ञान कभी पैदा न

होता। गैलीलियो को सवाल उठा कि जमीन चपटी है या गोल? बाइबिल खोल कर देख सकता था। उसमें लिखा है जमीन चपटी है, बात खत्म हो जाती। उसने कहा, बाइबिल की हम फिकर नहीं करते। हम तो खोजने जाएंगे कि जमीन कैसी है! खोजने गया तो पाया कि बाइबिल गलत है।

हिंदुस्तान अभी भी अपने शास्त्रों के विपरीत नहीं है। और जब तक हिंदुस्तान की प्रतिभा शास्त्र के विपरीत नहीं है तब तक गैलीलियो पैदा नहीं होगा, कोपरनिकस पैदा नहीं होगा, डार्विन पैदा नहीं होगा, मार्क्स पैदा नहीं होगा, फ्रायड पैदा नहीं होगा--वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं होगी। वह नहीं हो सकती है। हम जब भी कुछ खोजते हैं, फौरन शास्त्र में जाकर संदर्भ देख लेते हैं। बात खत्म हो जाती है। प्रयोग में नहीं उतरते, जिंदगी देखने नहीं जाते। और कई दफे ऐसा हो जाता है--इतना कठिन है अवैज्ञानिक मन!

मैंने सुना है, अरस्तू तो बड़ा विचारक था। उसने लिखा है कि औरतों के दांत आदमियों से कम होते हैं। तो उसने अपनी किताब में भी लिख दिया कि स्त्रियों के दांत आदमी से कम होते हैं। अब दो औरतों वाले आदमी को कितनी देर लगती थी? एक मिसेज को कहता, जरा मुंह खोलो, दांत गिन लेता। लेकिन उसने नहीं गिने। पुरानी किताब में लिखा है कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं और सब किताबें पुरुषों ने लिखी हैं तो स्त्रियों में बराबर दांत होते हैं, यह भी कैसे मान सकते? स्त्रियों में कमी तो होनी ही चाहिए सब तरह की। वह तो पहले पक्का सिद्धांत था।

अब यह बड़े मजे की बात है कि यह किसने किताब लिखी। और अरस्तू ने भी अपनी किताब में लिख दिया कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं--गिना नहीं। अरस्तू के मरने के एक हजार साल तक सारा यूरोप यह मानता रहा कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। अब मजा है कि पुरुषों को छोड़ दो, पक्षपात है उनका। स्त्रियां क्या करती रहीं, अपने दांत नहीं गिन सकती थीं? लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि शास्त्र में जाती है। उन्होंने भी किताब खोल कर पढ़ा होगा, स्त्रियों के दांत कम हैं तो बात खत्म हो गई। आश्चर्यजनक है, लेकिन सत्य है, हजारों मान्यताएं चल रही हैं क्योंकि शास्त्र में लिखी हैं।

देश को एक वैज्ञानिक बुद्धि चाहिए तो हम अपने जिंदगी के सवालों को हल कर सकेंगे। हमारी अवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने बहुत कुछ समस्याएं खड़ी कर दी हैं, वे चारों तरफ खड़ी हैं। वे हमें घेरे हुए हैं। उनको काटना मुश्किल होगा क्योंकि विज्ञान पैदा न हो तो टेक्नालॉजी पैदा नहीं होगी।

हां, हम ट्रांसप्लांट कर सकते हैं। पश्चिम से हम उधार टेक्नालॉजी ला सकते हैं। लेकिन उधार बुद्धि कहां से लाइएगा? और बैलगाड़ी में बैठने वाले आदमी के पास एक तरह की बुद्धि होती है--बैलगाड़ी की। हवाई जहाज मिल सकता है उधार--बैलगाड़ी में बैठने वाले आदमी को हवाई जहाज में बिठाया जा सकता है, पायलट बनाया जा सकता है। लेकिन बैलगाड़ी वाले की बुद्धि एकदम हवाई जहाज के पायलट की बुद्धि नहीं हो जाती। और बैलगाड़ी वाली बुद्धि के हाथ में हवाई जहाज खतरनाक सिद्ध होगा। नुकसान में ले जाएगा, फायदे में नहीं ले जा सकता। मुश्किल में डाल देगा।

नहीं, पहले इस देश की बुद्धि बदलनी चाहिए। क्या आपको पता है कि तीन सौ साल में पश्चिम में जो विज्ञान का विकास हुआ, उसके जन्म का कारण संदेह की प्रवृत्ति है। संदेह, डाउट! तीन सौ साल में पश्चिम के युवकों ने संदेह किया पूर्वजों पर, पुरखों पर, पिताओं पर, पिछली सदियों पर, पिछले शास्त्रों पर, जीसस पर, मोहम्मद पर, सब पर संदेह किया--मूसा पर, जरथुस्त्र पर। उस संदेह का परिणाम हुआ विज्ञान। आज भी हम संदेह करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं। और अगर हम संदेह नहीं कर पाते तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकता। वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं हो सकती।

अवैज्ञानिक बुद्धि का आधार है विश्वास, बिलीफ और वैज्ञानिक बुद्धि का आधार है संदेह, डाउट। क्या आज भी हम संदेह करने की स्थिति में हैं? नहीं, आज भी शिक्षक सिखा रहा है, विश्वास करो। पिता सिखा रहा है, विश्वास करो। बड़ा भाई छोटे भाई को सिखा रहा है, विश्वास करो। सब तरफ विश्वास सिखाया जा रहा है। विश्वास अब आगे हमें कठिनाई में डाल दे सकता है। संदेह सिखाने की जरूरत है। और यह बड़े मजे की बात है कि जब कोई आदमी ठीक से संदेह करने लगता है तो वह उन विश्वासों पर पहुंच जाता है जो असंदिग्ध हैं। जब कोई आदमी ठीक से संदेह करता है तो वह उन विश्वासों पर पहुंच जाता है जो असंदिग्ध हैं। और जब कोई आदमी पहले से विश्वास कर लेता है, तो कभी असंदिग्ध विश्वासों पर नहीं पहुंच पाता। संदेह की यात्रा सत्य तक ले जाती है, विश्वास की यात्रा कभी भी नहीं।

लेकिन हम विश्वास से भरे हुए लोग हैं। हम सब तरफ से विश्वास पर जी रहे हैं। यह तोड़ना पड़ेगा। यह मिटाना पड़ेगा। तो आज कोई कारण नहीं है कि जो पश्चिम में संभव हुई है समृद्धि, वह यहां संभव क्यों न हो जाए? बेहतर जमीन है, बेहतर आकाश है, बेहतर मौसम है, ज्यादा उपलब्ध सूरज है, पहाड़ हैं, संपत्ति है, जमीन है, सब है। लेकिन वह बुद्धि नहीं है जो उसमें से कीमिया को निकाल ले और संपत्ति को पैदा कर दे। सिर्फ बुद्धि की कमी बाधा डाल रही है, और कोई बाधा नहीं है। और बुद्धि हो तो संपत्ति पैदा होगी, लेकिन हमको उसकी भी फिकर नहीं है।

हम कहते हैं, जो सम्पत्ति है उसे बांटिए, सब मामला हल हो जाएगा। तो हमारा सारा बुद्धिमान वर्ग एक नारे में लगा है कि बस संपत्ति को बांटो। मैं नहीं मानता कि वह बहुत बुद्धिमान वर्ग है जो इस नारे में लगा है। संपत्ति नहीं है, बांटिएगा क्या? पहले संपत्ति पैदा करो, पहले संपत्ति को बरसाओ, पहले संपत्ति से देश को भर दो। फिर बांटना तो बहुत आसान काम है।

लेकिन अगर आज हमने जबरदस्ती संपत्ति बांट भी ली--बांट लेंगे, ऐसा लगता है--ऐसा लगता है कि बांट लेंगे क्योंकि रिक्शा वाला बहुत प्रसन्न हो गया है। इंदिरा जी के आस-पास घेरा लगा कर नारे लगा रहा है। वह कह रहा है जिंदाबाद। हां, े लगता है कि हम संपत्ति बांट लेंगे। संपत्ति नहीं है, उसको बांट लेंगे। वह बंट जाएगी। और यह देश और गरीब हो जाएगा। संपत्ति नहीं बांटनी है, विश्वास की हत्या करनी है और संदेह को जन्म देना है। धर्म के अंधेपन से मुक्त होना है और वैज्ञानिक की आंख पैदा करनी है। गरीबी का पुराना मोह छोड़ना है और संपत्ति को पैदा करने का स्वस्थ आग्रह पैदा करना है। दीन-हीन होने की पुरानी व्याख्याएं जला डालनी हैं और समृद्ध होने के नये आधार रखने हैं। भौतिकवाद को स्वीकार करना है ताकि अध्यात्म का कलश, स्वर्ण-कलश उस पर चढ़ाया जा सके।

ये काम हैं जो देश के बुद्धिमान को करने हैं, लेकिन देश का बुद्धिमान नारेबाजी में है। और नारेबाजी के साथ भीड़ भी खड़ी हो जाती है। भीड़ बहुत कम समझदार है। भीड़ को खड़ा कर लेना बहुत कठिन नहीं है। अगर भीड़ बहुत समझदार होती तो उसने अपने मसले कभी के हल कर लिए होते, लेकिन भीड़ बहुत समझदार नहीं है। और इस देश में भीड़ को इकट्ठा अगर करना हो तो नासमझी की बातें करना जरूरी हैं। नासमझी हो तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इस देश में नेता होना हो तो थोड़ा मीडियाकर बुद्धि का होना बहुत जरूरी है। बहुत प्रतिभावान आदमी इस देश में नेता नहीं हो सकता। क्योंकि बहुत प्रतिभावान आदमी भीड़ की बातों पर राजी नहीं होगा। अक्सर प्रतिभावान आदमी भीड़ की बातों का विरोध करेगा।

क्योंकि भीड़ अपनी भूलों से परेशान है। उसको उसकी भूलों को स्वीकार करना खतरनाक है। लेकिन नेता होने का सूत्र है कि जो भीड़ कहती है वही तुम भी कहो। नेता होने की कीमिया है, केमिस्ट्री है कि हमेशा भीड़ के

पीछे चलो। नेता दिखता आगे है, होता हमेशा पीछे है। नेता अपने अनुयायी का भी अनुयायी होता है। अनुयायी का भी अनुयायी जो हो सकता है वही नेता हो सकता है। वह अनुयायी के पीछे चलता है। वह देखता है, अनुयायी क्या मांगता है, वही कहो, अनुयायी क्या चाहता है, वही कहो। नारे पैदा हो गए हैं। देश बीस साल से नारों के आस-पास जी रहा है। स्लोगनबाजी है, उसमें कुछ बहुत सोच-विचार नहीं है। उसमें कोई बहुत गहरी खोज नहीं है। देश के महारोग के भीतर उतरने की कोई निष्ठावान चेष्टा नहीं है, सिर्फ नारेबाजी है।

जनता को क्या नारा ठीक लगता है, वह नारा लगाओ। और जनता ही अगर समझदार होती तो पांच हजार साल की दीनता और दरिद्रता हमने न झेली होती। अब फिर जनता प्रमुख हो गई है। अब फिर जनता जिसको साथ देगी वही इस मुल्क को आगे चलाएगा। जनता के मानस में नये विचार डालने पड़ेंगे। जनता का मानस बदलना पड़ेगा तो शायद गलत नेता उसे गलत मार्गदर्शन न दे सकें। अभी इस देश को पचास साल एक परिपक्व पूंजीवाद की जरूरत है, एक मैच्योर कैपटेलिज्म की जरूरत है।

तो मैं समाजवादी हूं, जब ऐसी बात कहता हूं तो कठिन मालूम पड़ती है। समाजवादी मित्र मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आप क्या कहते हैं? मैं यह कहता हूं कि पूंजीवाद आ जाए तो समाजवाद आ सके। पूंजीवाद ही नहीं आए तो समाजवाद नहीं आ सकता। और मैं यह कहना चाहता हूं कि रूस का प्रयोग बहुत गहरे अर्थों में असफल हुआ है और परेशानी हुई है। चीन का प्रयोग असफल हो रहा है और भीतर बहुत गहरी परेशानी है।

चीन ने पहली दफा तिब्बत पर हमला किया तो मेरे एक मित्र मानसरोवर की यात्रा पर गए थे। वे लौटते थे तो एक तिब्बती गांव में उनको पकड़ लिया गया। जिन चीन के सैनिकों ने पकड़ा, वे मुझसे कहने लगे, हम बहुत हैरान हुए। वे चीन के सैनिक इनका एक-एक सामान देखने लगे। स्टोव था इनके पास। वे स्टोव नहीं समझ सके कि यह स्टोव क्या है। तो उन्होंने कहा कि इसे जला कर बताओ। चला कर बताओ कि यह है क्या, यह चीज क्या है? वे समझे कि कोई खतरनाक यंत्र है। स्टोव, साधारण, चाय बनाने का स्टोव--चीन का सैनिक नहीं समझ सका कि यह क्या है! गांव के किसान हैं, जबरदस्ती भर्ती कर लिए गए हैं, जबरदस्ती बंदूक पकड़ा दी गई है। स्टोव को चीन के सैनिक नहीं समझ पाए। वे मेरे मित्र कहने लगे, हम बहुत हैरान हुए। हमने स्टोव जला कर बताया तो जो आठ-दस सैनिक थे वे एकदम भाग कर दरवाजे के बाहर खड़े हो गए क्योंकि आग भभकी। उन्होंने समझा कि पता नहीं क्या विस्फोट हो जाए। क्या खतरा हो जाए।

चीन जबरदस्ती समाजवादी होने की कोशिश कर रहा है इसलिए भारी रक्तपात हो रहा है। पांच महीने के बच्चे को मां से निकालेंगे तो रक्तपात होगा। और रक्तपात के बाद भी समाधान नहीं है। समाधान इसलिए नहीं है कि समृद्धि है ही नहीं, बांटिएगा क्या? तो चीन भीतर से गरीब और परेशान है। मुश्किल में है। उस मुश्किल को हल करता है आस-पास हमले करके। आस-पास हमले करने से आशा बंधती है चीन के आदमी को कि शायद कहीं से संपत्ति लूट लेंगे। कहीं कुछ उपद्रव हो जाए। लेकिन कहीं से संपत्ति लूटी नहीं जा सकती। संपत्ति पैदा करनी पड़ती है।

रूस चालीस साल के अनुभव के बाद नये अनुभव ले रहा है। अभी उन्नीस सौ साठ में पहली दफा रूस में व्यक्तिगत कार रखने की छूट दी गई है। हालांकि हैं नहीं अभी कि व्यक्तिगत कारें सारे लोग रख सकें। सौ-पचास लोग बड़े नगरों में रख सकते हैं। लेकिन व्यक्तिगत कार रखने की छूट उन्नीस सौ साठ में दी और यह अनुभव किया कि अब व्यक्तिगत छूट थोड़ी दो। क्योंकि लोगों का इनसेंटिव मर गया, लोगों की प्रेरणा मर गई। कोई काम नहीं करना चाहता। रूस के सामने बड़े से बड़ा सवाल है, रूस का युवक काम नहीं करना चाहता क्योंकि काम करने का कोई प्रयोजन नहीं है।

अमरीका, मैं मानता हूं, पचास वर्षों में ज्यादा बेहतर समाजवादी मुल्क सिद्ध होगा। वह रोज समाजवाद की तरफ बढ़ेगा, बढ़ना पड़ेगा। संपत्ति जब अतिरिक्त हो जाएगी तो व्यक्तिगत कब्जे का कोई मतलब नहीं है। व्यक्तिगत कब्जे का एक ही अर्थ है कि कम है संपत्ति, न्यून है, तभी तक व्यक्तिगत कब्जे का अर्थ है। गांव में हवा पर हम कब्जा नहीं करते, क्योंकि हवा बहुत है। कब्जा करने का कोई मतलब नहीं है। जमीन पर हमने कब्जा किया, लेकिन कब किया? जब जमीन कम पड़ी और संख्या ज्यादा हुई। आज से सौ साल पहले तक जमीन पर कोई कब्जा न था। जो जितनी जमीन जोत लेता था वह उसकी हो जाती थी।

मेरे नाना ने मुझे कहा कि उन्हें जो जमीन मिली थी वह मुफ्त मिली थी। क्योंकि कोई जोतने वाला न था। जो जोत ले उसी को जमीन मिल जाती थी। जमीन का कोई मूल्य न था। संख्या कम थी, जमीन ज्यादा थी तो जमीन पर कोई कब्जा न था। संख्या ज्यादा हुई, जमीन कम पड़ी, जमीन पर कब्जा आ गया। जो चीज कम हो जाएगी उस पर कब्जा हो जाएगा।

संपत्ति जब तक कम है तब तक व्यक्तिगत कब्जे को हटाना मुश्किल है। और अगर हटाया तो संपत्ति का पैदा होना बंद हो जाएगा। क्योंकि पैदा होने की प्रेरणा विलीन हो जाएगी। संपत्ति इतनी हो जानी चाहिए जैसे हवा है, पानी है। ताकि उस पर व्यक्तिगत कब्जे का अर्थ खो जाए। अमरीका पचास वर्षों में समाजवादी हो सकता है। और वहां जो समाजवाद आएगा वह एकदम लोकतांत्रिक और अहिंसात्मक होगा। क्योंकि तब समाजवाद सहज आ जाएगा। संपत्ति के अतिरेक से आया हुआ समाजवाद ही सहज समाजवाद हो सकता है। लेकिन इस मुल्क में कैसे आ सकता है? हम तो बहुत बुरी हालत में हैं। यहां संपत्ति नहीं है। ये संपत्ति पैदा करने के मूल आधार हमें सोचने पड़ेंगे।

मैंने कुछ बातें कहीं इस आशा में कि आप सोचेंगे, विचार करेंगे। निर्णय जल्दी हमें लेना पड़ेगा देश को कि क्या करना है। निर्णय अगर हमने सोच कर लिया, नारेबाजी में नहीं लिया तो शायद सहज उपयोगी हो सके और नारेबाजी में निर्णय लिया तो खतरनाक भी हो सकता है। नारे सुंदर लगते हैं, इससे सत्य नहीं हो जाते। और कोई बात हमारी ईर्ष्या को तृप्त करती है, इससे सहयोगी और उपयोगी नहीं हो जाती।

और भी समस्याएं हैं, कल उन पर बात करूंगा। आपके कोई सवाल होंगे, वे लिख कर दे देंगे।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

राष्ट्रभाषा और खण्डित देश

मेरे प्रिय आत्मन्!

प्रश्नों के ढेर से लगता है कि भारत के सामने कितनी जीवंत समस्याएं होंगी। करीब-करीब समस्याएं ही समस्याएं हैं और समाधान नहीं हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या भारत में कोई राष्ट्रभाषा होनी चाहिए? यदि हां, तो कौन सी?

राष्ट्रभाषा का सवाल ही भारत में बुनियादी रूप से गलत है। भारत में इतनी भाषाएं हैं कि राष्ट्रभाषा सिर्फ लादी जा सकती है और जिन भाषाओं पर लादी जाएगी उनके साथ अन्याय होगा। भारत में राष्ट्रभाषा की कोई भी जरूरत नहीं है। भारत में बहुत सी राष्ट्रभाषाएं ही होंगी और आज कोई कठिनाई भी नहीं है कि राष्ट्रभाषा जरूरी हो। रूस बिना राष्ट्रभाषा के काम चलाता है तो हम क्यों नहीं चला सकते। आज तो यांत्रिक व्यवस्था हो सकती है संसद में, बहुत थोड़े खर्च से, जिसके द्वारा एक भाषा सभी भाषाओं में अनुवादित हो जाए। लेकिन राष्ट्रभाषा का मोह बहुत महंगा पड़ रहा है। भारत की प्रत्येक भाषा राष्ट्रभाषा होने में समर्थ है इसलिए कोई भी भाषा अपना अधिकार छोड़ने को राजी नहीं होगी--होना भी नहीं चाहिए। लेकिन यदि हमने जबरदस्ती किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बना कर थोपने की कोशिश की तो देश खंड-खंड हो जाएगा। आज देश के बीच विभाजन के जो बुनियादी कारण हैं उनमें भाषा एक है। राष्ट्रभाषा बनाने का खयाल ही राष्ट्र को खंड-खंड में तोड़ने का कारण बनेगा। लेकिन हमें वह भूत जोर से सवार है कि राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। अगर राष्ट्र को बचाना हो तो राष्ट्रभाषा से बचना पड़ेगा। और अगर राष्ट्र को मिटाना हो तो राष्ट्रभाषा की बात आगे भी जारी रखी जा सकती है।

मेरी दृष्टि में भारत में जितनी भाषाएं बोली जाती हैं, सब राष्ट्रभाषाएं हैं। उनको समान आदर उपलब्ध होना चाहिए। किसी एक भाषा का साम्राज्य दूसरी भाषाओं पर बरदाश्त नहीं किया जाएगा, वह भाषा चाहे हिंदी हो और चाहे कोई और हो। कोई कारण नहीं है कि तमिल या तेलगू या बंगाली या गुजराती को हिंदी दबाए। लेकिन गांधी जी के कारण कुछ बीमारियां इस देश में छूटीं, उनमें एक बीमारी हिंदी को राष्ट्रभाषा का वहम देने की भी है। हिंदी को यह अहंकार गांधी जी दे गए कि वह राष्ट्रभाषा है। तो हिंदी प्रांत उस अहंकार से परेशान हैं और वह अपनी भाषा को पूरे देश पर थोपने की कोशिश में लगे हुए हैं। स्वाभाविक है कि इसकी बगावत हो। हिंदी का साम्राज्य भी बरदाश्त नहीं किया जा सकता हैं, किसी भाषा का नहीं किया सकता हैं। कोई अड़चन भी नहीं है। सिर्फ संसद में हमें यांत्रिक व्यवस्था करनी चाहिए कि सारी भाषाएं अनुवादित हो सकें। और वैसे भी संसद कोई काम तो कोई करती नहीं है कि कोई अड़चन हो जाएगी। सालों तक एक-एक बात पर चर्चा चलती है, थोड़ी देर और चल लेगी तो कोई फर्क नहीं होने वाला है। संसद कुछ करती हो तो भी विचार होता कि कहीं कार्य में बाधा न पड़ जाए। कार्य में कोइ बाधा पड़ने वाली नहीं मालूम होती हैं।

फिर मेरी दृष्टि यह भी है कि यदि हम राष्ट्रभाषा को थोपने का उपाय न करें तो शायद बीस पच्चीस वर्षों में कोई एक भाषा विकसित हो और धीरे-धीरे राष्ट्र के प्राणों को घेर ले। वह भाषा हिंदी नहीं होगी, वह भाषा हिंदुस्तानी होगी। उसमें तमिल के शब्द भी होंगे, तेलगू के भी, अंग्रेजी के भी, गुजराती के भी, मराठी के भी। वह

एक मिश्रित नई भाषा होगी जो धीरे-धीरे भारत के जीवन में से विकसित हो जाएगी। लेकिन, अगर कोई शुद्धतावादी चाहता हो कि शुद्ध हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना है तो यह सब पागलपन की बातें है। इससे कुछ हित नहीं हो सकता है।

एक मित्र ने यह भी पूछा है कि क्या अंग्रेजी को देश से हटाया जाए?

अंग्रेजी को देश से हटाना बहुत आत्मघाती होगा। विगत दो सौ वर्षों में अंग्रेजी के माध्यम से हम जगत से संबंधित हुए हैं। और विगत दो सौ वर्षों में जो भी महत्वपूर्ण निर्मित हुआ है, वह अंग्रेजी भाषा-भाषी लोगों के द्वारा निर्मित हुआ है। और आने वाले भविष्य में भी अंग्रेजी का जगत निरंतर विकास आविष्कार और खोज करता रहेगा। यदि अंग्रेजी को भारत से हटाने की चेष्टा की गई तो हम अपने हाथ से जगत से टूट कर एक कुएं में बंद हो जाएंगे। वह बहुत महंगा पड़ेगा। लेकिन हमको सुखद लग सकता है कि अंग्रेजी अंग्रेजों की भाषा है इसलिए हटाओ। लेकिन अब सवाल अंग्रेजों की भाषा का नहीं, अब सवाल अंतर्राष्ट्रीय भाषा का है। और हमें अच्छा लग सकता है कि अंग्रेजों की भाषा है इसलिए हटाओ, तो अंग्रेजों की मोटरें, और रेलगाड़ियां और हवाई जहाज हटाने के संबंध में क्या खयाल है? सारी टेक्नालॉजी पश्चिम से आई है और अगर उस टेक्नालॉजी में दुनिया के साथ खड़े होना है तो अंग्रेजी पर अधिकार अत्यंत आवश्यक है। हमारे हित में है, पश्चिम के हित में नहीं है।

आज सारी दुनिया धीरे-धीरे अंग्रेजी जगत से संबंधित होती जा रही है। हर युग की एक भाषा होती है। उस युग की भाषा वही होती है जो उस युग को सर्वाधिक दान देती है। हमारे देश की कोई भी भाषा अभी जगत भाषा नहीं बन सकती क्योंकि जगत के विकास में हमारा आज कोई कंट्रीब्यूशन, कोई दान नहीं है। न हमने यंत्र दिए हैं, न समृद्धि दी है, न सुख दिया है। हमने विश्व को रूपांतरित करने के लिए आज कुछ भी नहीं दिया है। जो भाषा आज सर्वाधिक दान करेगी वही भाषा जगत की भाषा बनेगी। हमें इतने समर्थ होना पड़ेगा, इतने आविष्कारक, इतने वैज्ञानिक, तब हमारी कोई भाषा जागतिक महत्व की हो सकती है लेकिन आज अंग्रेजी से अपने को तोड़ना बहुत महंगा पड़ जाएगा।

सच तो यह है कि अंग्रेजों के जाने के बाद हमें अंग्रेजी को बचाने की तीव्रतम चेष्टा करनी चाहिए। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से ऐतिहासिक संयोग था कि हमें डेढ़ सौ या दो सौ वर्ष अंग्रेजी से संबंधित होने का मौका मिला। इस मौके को हम अपना वरदान सिद्ध कर सकते हैं। आज दुनिया में गैर-अंग्रेजी भाषी देशों में हमारा देश अकेला देश है जो ढंग से अंग्रेजी में सोच सकता है, विचार सकता है, बात कर सकता है। इस मौके को खो नहीं देना चाहिए। यह मौका हमने खोया है। बीस वर्षों में अंग्रेजी की क्षमता हमारी निरंतर कम हुई है क्योंकि हमको यह खयाल है कि अब अंग्रेजी की कोई जरूरत नहीं है। अंग्रेजी की जरूरत रोज-रोज बढ़ती चली जाएगी। न केवल अंग्रेजी की जरूरत पड़ेगी बल्कि भविष्य में हमें रूसी भी सीखनी पड़ेगी, चीनी भी सीखनी पड़ेगी। भविष्य में हमें और जगतिक भाषाओं पर भी अधिकार उपलब्ध करना पडेगा। जिस पर है, देश के नासमझ नेता उसको छोड़ने की बात कर रहे हैं। जिन पर नहीं है, उन पर अधिकार करने की बात तो बहुत दूर है।

अंग्रेजी बचाने की चेष्टा अत्यंत जरूरी है। लेकिन अंग्रेजी को कोई राष्ट्रभाषा बनाने की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है इसलिए राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। राष्ट्रभाषा की जरूरत ही नहीं है। देश की सभी भाषाएं राष्ट्रभाषा की हैसियत से काम करें, अंग्रेजी हमारा अंतर्राष्ट्रीय संबंध की भाषा रहे और उसमें जितने निष्णात हो सकें, उतना अच्छा है। लेकिन अंग्रेजी के साथ गुलामी का दंश जुड़ गया। उस दंश से हमें बचना

चाहिए और गुलामी ने कुछ अच्छाइयां भी दी हैं और कुछ बुराइयां भी दी हैं। बुराइयों को काट डालना जरूरी है, अच्छाइयों को बचा लेना जरूरी है। सिर्फ इसलिए कि वह गुलामी के क्षणों में हम पर आयीं, उनसे छूट जाना अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना होगा।

ठीक से समझा जाए तो मुसलमानों की हुकूमत इस देश में एक हजार साल चली और उसका कुल कारण इतना था कि मुसलमान संस्कृति ने भारत को कुछ भी शिक्षित करने की कोशिश नहीं की। अंग्रेज भी भारत में एक हजार साल चल सकते थे--ज्यादा चल सकते थे, लेकिन अंग्रेजों ने एक भूल की--उन्होंने भारत को शिक्षित करने की कोशिश की। उनकी शिक्षा ही बगावत का कारण बनी। हिंदुस्तान में जो बगावत, विद्रोह और क्रांति की भावना पैदा हुई, लोकतंत्र, स्वतंत्रता का जो खयाल पैदा हुआ वह पश्चिम से आया। भारत की कांग्रेस संस्था जिसने इस क्रांति को अगुआई दी, अंग्रेजों के द्वारा निर्मित संस्था थी। और भारत के सारे नेता, जिन्होंने इस देश को विचार दिए और क्रांति में ले गए, पश्चिम में शिक्षित हुए थे और पश्चिम से स्वतंत्रता का खयाल लेकर लौटे थे और क्रांति का खयाल लेकर लौटे थे।

क्रांति का खयाल भारतीय नहीं है। भारत ने कभी क्रांति नहीं की है। विद्रोह और बगावत की बात भारतीय नहीं है। भारतीय मन संतोष और तृप्ति को मानता है, क्रांति और बगावत को नहीं। भारतीय मन सब स्थितियों में राजी होने को तैयार है--तोड़ने को, बदलने को नहीं। परिवर्तन की आकांक्षा बिल्कुल अभारतीय है और अंग्रेजों के द्वारा इस देश में आई। विज्ञान की भी सारी क्षमता उनके मार्ग से हम तक आई। निश्चित ही गुलामी बहुत दुखद थी और गुलामी में जो भी हमारे पास आया उससे हमारा दुख का संबंध हो गया। लेकिन हमें सोच समझ कर काम करना पड़ेगा। माना कि पैर में घाव हो जाए तो बहुत दुख होता है, हम घाव को अलग कर देते हैं, पैर को बचा लेते हैं। लेकिन पैर को ही अलग नहीं कर देते।

बहुत घाव लगे गुलामी में, लेकिन उन घावों के साथ कुछ पश्चिम की संस्कृति का श्रेष्ठ भी हम तक आया है। उसे बचा लेने की अत्यंत जरूरत है। क्यों? क्योंकि आधुनिकीकरण में--भारत के मॉर्डनाइजेशन में, वह पश्चिम से जो आया है उसकी अनिवार्य जरूरत पड़ेगी। अन्यथा हम बहुत पिछड़े हुए हो जाएंगे। आज विज्ञान की श्रेष्ठतम शाखाओं में जो भी उपलब्ध किया जा रहा है उसका अगर हम अनुवाद करने बैठें तो हम दो सौ वर्ष तो अनुवाद में लगा देंगे। और दो सौ वर्ष जब तक हम इसका अनुवाद करेंगे तब तक विज्ञान ठहरा नहीं रहेगा। वह दो सौ वर्ष आगे निकल चुका होगा। इतने जोर से क्रांति हो रही है कि अनुवाद के द्वारा काम नहीं हो सकता। हमें सीधा ही संपर्क बांधना होगा अन्यथा हम संपर्क से खो जाएंगे। और इस सीधे संपर्क के लिए अंग्रेजी को बचा लेना अत्यंत जरूरी है। और अब हम अंग्रेजी को हिम्मत से और प्रेम से बचा सकते हैं क्योंकि वह अब गुलामी की बात नहीं है, अब वह अंतर्राष्ट्रीय संबंध की और सीखने की बात है। अंग्रेजी तो अनिवार्य होनी ही चाहिए, उससे तो छुटकारा नहीं है। उससे छुटकारे की बात ही महंगी पड़ जएगी।

हमारा मन करता है क्योंकि अंग्रेजी सीखने की कठिनाई है। हमारा मन करता है, इससे छुटकारा हो जाए। युवक पसंद करेगा अंग्रेजी से छुटकारा हो जाए। असल में कठिनाई से बचने की कौन कोशिश नहीं करता है? लेकिन कठिनाइयों से कौम जो बचने की कोशिश करती है वह धीरे-धीरे कमजोर हो जाती है और नष्ट हो जाती है। पिछले, अतीत, इतिहास में भी हमने कठिनाइयों से बचने की कोशिश में बहुत कुछ गंवाया है। अब आगे हम कठिनाइयों से बचेंगे तो बहुत बुरी बात हो जाएगी। कठिनाइयों से नहीं बचना है। कठिनाइयों को स्वीकार करना पड़ेगा, उनकी चुनौती माननी पड़ेगी और उन कठिनाइयों से गुजर कर देश की नई पीढ़ी को ठीक से निर्मित करना होगा।

अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा की तरह हमें सीखनी ही है, उससे छुटकारा नहीं लेना है। और राष्ट्रीय भाषा विकसित हो सकती है, अगर थोपी न जाए। हिंदी धीरे-धीरे विकसित हो रही है। उसके प्रति प्रेम था दक्षिण में भी, बंगाल में भी, गुजरात में भी, सब तरफ उसके प्रति प्रेम था। लेकिन जैसे ही राष्ट्रभाषा का खयाल आया और हिंदी ने कोशिश की कि राष्ट्रभाषा बन जाए और हिंदी साम्राज्यवादी कुछ नेतागण पागल की तरह उसको राष्ट्रभाषा बनाने में लग गए, वैसे ही तनाव पैदा हो गया और रेसिस्टेंस शुरू हो गया। सारा मुल्क तन गया और उसने कहा, यह बरदाश्त नहीं किया जा सकता--नहीं करना चाहिए। गलत है बरदाश्त करना।

कोई भी चीज थोपी नहीं जा सकती और भाषाएं थोपने से विकसित नहीं होतीं। भाषाएं प्रेम से, अंतर्संबंधों से विकसित होती हैं। वे अपने आप विकसित होती चली जाती हैं। अगर देश साथ-साथ जीएगा तो धीरे-धीरे एक भाषा, आम बोलचाल की भाषा विकसित हो जाएगी। वह हिंदुस्तानी होगी। उसमें सब भाषाओं के शब्द होंगे और वह हिंदी से ज्यादा बहुमूल्य होगी, समृद्ध होगी। क्योंकि सभी भाषाओं की धाराएं उसमें आकर मिल जाएंगी। वह अकेली हिंदी नहीं होगी, वह एक बिल्कुल ही नई भाषा होगी। उस नई भाषा की दिशा में कदम उठाए जा सकते हैं।

पहला कदम है, राष्ट्रभाषा की बात बंद कर दें।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि देश की एकता के लिए क्या किया जाए? देश का इंटिग्रेशन, राष्ट्रीय एकता कैसे हो?

उसमें कुछ बातें सोचनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह कि देश की सारी राजनीति देश को खंड-खंड बनाए रखने पर जीवित है और वे ही राजनीतिज्ञ बातें करते हैं कि राष्ट्र एक कैसे हो? गुजरात का राजनीतिज्ञ जिंदा है गुजरात की अलग इकाई पर, महाराष्ट्र का राजनीतिज्ञ जिंदा है महाराष्ट्र की अलग इकाई पर, मैसूर का राजनीतिज्ञ मैसूर की अलग इकाई पर जिंदा है। मैसूर और महाराष्ट्र लड़ते रहेंगे, कि एक जिला मैसूर में हो कि महाराष्ट्र में, और ऊपर दिल्ली में बैठ कर वे विचार करेंगे--वे ही लोग, कि राष्ट्र की एकता कैसे हो? असल में राजनीतिज्ञ लोकल, स्थानीय स्वार्थ पर जिंदा है और राष्ट्रीय स्वार्थ की बात कर रहा है, इसलिए यह एकता संभव नहीं हो सकती है।

यह एकता संभव एक ही तरह से हो सकती है कि देश में स्थानीय सरकारों को विदा किया जाए, सिर्फ केंद्रीय सरकार हो; उसके अतिरिक्त देश की एकता नहीं हो सकती। देश में केंद्रीय सरकार हो, लेकिन राजनीतिज्ञ पसंद न करेगा। क्योंकि फिर इतने गवर्नर कैसे होंगे, इतने मुख्यमंत्री कैसे होंगे, इतने मंत्री, उपमंत्री कैसे होंगे? बहुत कठिनाई हो जाएगी। थोड़े से लोगों के हाथ में ही फिर सत्ता होगी। इतने लोग सत्ताधिकारी होने का मजा नहीं ले सकेंगे। उनकी सत्ताधिकारी होनी की इच्छा देश को खंड-खंड तोड़ती चली जाती है। फिर तेलंगाना चाहता है अलग राज्य बन जाए, पंजाब चाहता है अलग राज्य बन जाए, झारखंड चाहता है बिहार में अलग राज्य बन जाए, बरार चाहता है विदर्भ अलग राज्य बन जाए। क्योंकि राजनीतिज्ञ देखते है कि एक प्रदेश दो हिस्सों में टूटे तो फिर दो मुख्यमंत्री होते हैं, दो मंत्रालय होते है, दो गवर्नर होते है। राजनीतिज्ञ को सुविधा मिलती है देश जितने हिस्सों में टूटे। राजनीतिज्ञ का हित इस पर निर्भर है कि देश टूटता चला जाए और फिर राजनीतिज्ञ ऊपर बैठ कर बातें करते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो? सेमिनार बुलाता है, विचार करता है। वह विचार बेकार है, उनसे कुछ हल नहीं हो सकता है। अगर देश को एक बनाना है तो देश में एक केंद्रीय सरकार के

अतिरिक्त और सरकारों की कोई जरूरत नहीं है। एक सरकार के रहते ही लोकल हित समाप्त हो जाएंगे, स्थानीय हित समाप्त हो जाएंगे। फिर नर्मदा का जल गुजरात का है कि मध्यप्रदेश का, यह सवाल नहीं रहेगा। फिर नर्मदा का जल नर्मदा का होगा। अभी बहुत झंझट है। फिर कौन सा जिला मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में, इस पर गोली नहीं चलेगी। क्योंकि जिला अपनी जगह है, अपनी जगह रहेगा। वह पूरे देश का होगा। एक केंद्रिय सरकार निर्मित होते ही देश एक होने लगेगा।

हां, देश के विभाजन एडमिनिस्ट्रेशन के आधार पर होने चाहिए--झोनल, चार टुकड़े हो जाएं। जोनल एडमिनिस्ट्रेशन की बात है, राजनीतिक विभाजन की बात नहीं है। इकाइयां हो जाएं, जैसे रेलवे की इकाइयां हैं। रेलवे में कोई झगड़ा नहीं है कि वेस्टर्न रेलवे और सेंट्रल रेलवे से युद्ध कर रही हो। कोई झगड़ा नहीं है, एडमिनिस्ट्रेटिव विभाजन है। देश का विभाजन प्रशासनिक होना चाहिए, राजनीतिक नहीं। पोलिटिकल विभाजन खतरनाक है। और अगर पोलिटिकल विभाजन चलता है तो एक-एक राज्य को हमें और छोटे राज्यों में तोड़ना ही पड़ेगा क्योंकि छोटे राजनीतिज्ञ छुटभय्यों के लिए क्या किया जाए? उन्हें भी प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री और गवर्नर होना है। फिर उनको रोकने का कारण भी क्या है? फिर गुजरात एक क्यों हो? चार गुजरात क्यों न हों? सौराष्ट्र अलग क्यों न हो?

आखिर सौराष्ट्र के भी राजनीतिज्ञ हैं, उनको भी मजा लेने का हक है। जबसे गुजरात बना, तबसे वे बेचारे बड़े परेशान हैं। वे मुझे मिलते हैं। मेरे कई मित्र हैं उनमें। वह बड़े परेशान हैं। जब सौराष्ट्र था तो उनमें कोई मुख्यमंत्री था, कोई मंत्री था, कोई कुछ था। वह अब कुछ भी नहीं रह गए। तो उनकी चेष्टा अगर हो कि सौराष्ट्र अलग हो तो बुरा क्या है? मैं यह कहता हूं, या तो फिर देश को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ दें, एक-एक गांव में एक-एक मिनिस्ट्री बना दो, तो तृप्ति हो सकती है। फिर भी होगी पक्का नहीं है, क्योंकि मोहल्ले लड़ सकते हैं। मुश्किल है मामला। राजनीति कहां रुकेगी कहना मुश्किल है।

तो एक रास्ता तो यह है कि एक-एक पंचायत एक-एक मंत्रालय हो जाए और या एक रास्ता यह है कि राष्ट्र की एक ही केंद्रीय सरकार हो। एक केंद्र होते ही देश के विभाजन की जो हमें शक्ल दिखाई पड़ती है, वह विदा हो जाएगी। चर्चिल ने हिंदुस्तान की आजादी मिलते वक्त एक बहुत दुखद भविष्यवाणी की थी। उसने कहा था कि दे तो रहे हो आजादी इनको, लेकिन बीस साल में ये वही हालत कर लेंगे जो अंग्रेजों से लेते समय मुसलमान साम्राज्य की थी कि बाप बेटे को मार रहा था, बेटा बाप को कैद कर रहा था। सारा देश खंड-खंड में बंट गया था। दिल्ली का सामरज्य सम्राट कहलाता जरूर था लेकिन आगरा भी वश में नहीं है। नाम ही रह गया। सारा मुल्क खंड-खंड था। एक-एक सिपहसालार, एक-एक सेनापति अपना राज्य बनाए हुए बैठा गया था। चर्चिल ने कहा था, बीस साल में, हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ अंग्रेजोंने मुसलमनोंसे जब भारत लिया था उसी हालत में भारत को पहुंचा देंगे। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ उसकी भविष्यवाणी को पूरी करने में जी-जान से लगे हुए हैं। वे सब चेष्टा कर रहे हैं कि कहीं चर्चिल गलत न हो जाए। देश को खंड-खंड तोड़े चले जा रहे हैं। निपट मूढ़ता की बातें हैं। चंडीगढ़ कहां हो? गोलियां चलें, आदमी मरें, छोटी-छोटी बातों पर!

लेकिन उसका मूल कारण क्या है? मूल कारण है कि हम छोटे-छोटे सभी राजनीतिज्ञों को सत्ता-अधिकार का रस देने की तैयारी दिखला रहे हैं। और फिर वे ही लोग मिल कर कहते हैं कि राष्ट्र की एकता कैसे हो, तब बहुत कठिनाई हो जाती है। जैसे चोर मिल कर विचार करें कि देश में चोरी कैसे बंद हो? सब एक-दूसरे की तरफ देखें, हंसें, भाषण करें और विदा हो जाएं। चोर कैसे देश में चोरी बंद करवाने का विचार कर सकते हैं? हां, कर सकते--इसलिए--सिर्फ--ताकि पूरा देश सुन ले कि हम भी चोरी के खिलाफ हैं, ताकि चोरी करने में

सुविधा हो जाए। अक्सर चोर ऐसा करते हैं। अगर कहीं चोरी हो जाए तो जिसने चोरी की है, उसके बचने का सबसे सरल उपाय यह है कि वह जोर से चिल्लाने लगे चोर के खिलाफ कि किसने चोरी की है, पकड़ो। तो फिर उसको कोई न पकड़ेगा क्योंकि इतना तो पक्का है कि इस आदमी ने चोरी नहीं की है। राजनीतिज्ञ चिल्लाते हैं कि देश की एकता चाहिए तो खयाल में आता है कि इन बेचारों का कोई हाथ नहीं है, ये निर्दोष मासूम हैं। और इनका ही हाथ है। इन्होंने देश को खंड-खंड किया है। देश खंड-खंड कहां है? सिवाय राजनीतिज्ञों के स्वार्थ के देश का कोई खंड-खंड होना नहीं है।

राजनीतिज्ञों को विदा करना पड़ेगा। छोटे-छोटे राजनीतिज्ञों की सबकी तृप्ति को रोकना पड़ेगा। एक राष्ट्र एक केंद्रीय सरकार के निर्मित होते ही बन जाएगा। एडमिनिस्ट्रेटिव--प्रशासनिक विभाजन होने चाहिए। जिले हों, प्रदेश हों, जोन हों, लेकिन उनकी कोई अपनी राजनीतिक केंद्रीय व्यवस्था न हो। अन्यथा कोई खतरा नहीं है, कोई कठिनाई नहीं है कि मद्रास कल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं, रोकने का क्या हक है किसी को? और बंगाल कहे कि हम अलग होना चाहते हैं, रोकने का हक क्या है किसी को? जितनी सत्ता इन छोटे टुकड़ों के हाथ में इकट्ठी होती चली जाएगी उतना देश खंड-खंड होता चला जाएगा। और देश इतना बड़ा है--यह हमारा सौभाग्य है--लेकिन इतने बड़े देश को हम उसका बड़ा होना दुर्भाग्य में भी बदल सकते हैं। छोटे-छोटे टुकड़े भी काफी बड़े हैं हमारे। उन टुकड़ों में भी हम तृप्त हो सकते हैं।

पहला खतरा हमने हिंदुस्तान-पाकिस्तान को बांट कर किया है। बंटवारा शुरू हो गया। उसी दिन... वह भी राजनीतिक बंटवारा था, उसमें भी गहरे में राजनीतिक बंटवारे की ही बात थी। दो गवर्नर जनरल होने चाहिए, दो प्रधानमंत्री होने चाहिए, दो राष्ट्रपति होने चाहिए। वह मजा भी गहरे में राजनीतिज्ञों का था। और हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ जो निरंतर कहते रहे कि हम बंटने न देंगे, हमारी लाश पर से बंटवारा होगा, वे सब जिंदा रहे। किसी की लाश पर से बंटवारा न हुआ। बंटवारा हुआ--आम आदमी की लाश से बंटवारा हुआ। और जो कहते थे कि बंटवारा हमारी लाश पर होगा उन्होंने बंटवारे पर दस्तखत किए। क्यों किए दस्तखत? कारण था; हिंदुस्तान के सब राजनीतिज्ञ बूढ़े हो गए थे। बूढ़े राजनीतिज्ञ खतरनाक सिद्ध हुए। उनको लगा कि अगर दो-चार-पांच वर्ष और आजादी की लड़ाई चलानी पड़ी तो कम से कम हम राष्ट्र को मुक्त करने वाले न होंगे, कोई और होगा। और कम से कम सत्ता न कर पाएंगे, कोई और करेगा।

हिंदुस्तान जिद्द कर सकता था कि या तो स्वतंत्र होंगे तो अखंड या गुलामी ही बेहतर है; लेकिन खंड-खंड नहीं होंगे। लेकिन हिंदुस्तान का राजनीतिज्ञ बूढ़ा हो गया था। उस बूढ़े को डर था कि कहीं मैं मर जाऊं, तो न मालूम किसके सिर पर सेहरा बंधे आजादी का कि किसने आजादी ली! वे जल्दी में थे। वे अपने मरने के पहले इंतजाम कर लेना चाहते थे अपने ऐतिहासिक मूल्य का। उन्होंने जल्दी में स्वीकार कर लिया। फिर इसके बाद एक पागल दौड़ शुरू हुई। और हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ को गांधी जी कुछ हथियार दे गए हैं जो बड़े खतरनाक हैं। वे सिखा गए हैं कि अनशन कर दो, बस... सब हो जाएगा। बस अनशन करो और बंटवारा करवा लो। अनशन करो और जो मांग पूरी करवानी हो वह करवा लो। हर आदमी को वह यह सिखा गए हैं कि अपने मरने की धमकी दो और फिर सब पूरा हो सकता है। तो देश भर बंट रहा है। जो भी मरने की धमकी दे सकता है वह देश को दो टुकड़ों में, कहीं भी किसी भी प्रदेश को, दो टुकड़ों में बंटवा सकता है। बस मरने की धमकी चाहिए।

इतना कमजोर हमारा मन हो गया है कि हम किसी भी धमकी, बलवे, हिंसा सब पर राजी हो जाते हैं और जो करना है वह करने नहीं देते हैं। नहीं, हिंदुस्तान के छोटे-छोटे राजनीतिज्ञ हिंदुस्तान को खंड-खंड में बांट देंगे। इनसे बचने की जरूरत है। हिंदुस्तान एक है। कृपा करके राजनीतिज्ञ बीच से हट जाएं और हम पाएंगे

हिंदुस्तान एक है। वह बंटा कहां है? लेकिन बांटने वाले लोग ही कर रहे हैं कि देश बंट गया है और इसको एक करना है। उनकी एक करने की भाषा से ऐसा पता चलता है कि कम से कम ये बेचारे बंटवाने वाले नहीं हैं। राजनीतिज्ञ को अलग कर दें, देश कहां बंटा हुआ है? देश इकट्ठा है।

कौन लड़वा रहा है? वह राजनीतिज्ञ लड़वा रहा है। और बिना लड़वाए राजनीतिज्ञ के हाथ की ताकत कम हो जाती है। जब वह लड़वाता है तभी ताकत में होता है। जब वह एक जिले के लिए मैसूर और महाराष्ट्र को लड़वाते हैं तो मैसूर के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और महाराष्ट्र के राजनीतिज्ञ की भी ताकत बढ़ती है और वे अपने वोटर को समझाएं रखते हैं कि जिला हम लेकर रहेंगे। और अगर जिला लेना हैं तो मुझे मुख्यमंत्री बना रखो, तभी जिला आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है। और मजा यह है कि जनता को जिला कहां रहता है, इससे क्या फर्क पड़ता है?

मैंने सुना है कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा तो एक पागलखाना था दोनों मुल्कों की सीमा पर। उसके बंटवारे का भी सवाल आ गया। उसको बांटना पड़ेगा। अधिकारियों ने जाकर पागलों से कहा कि तुम कहां रहना चाहते हो, हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में? उन्होंने कहाः हम तो यहीं रहना चाहते हैं। उन्होंने कहाः यह सवाल नहीं है, तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा, रहोगे तुम यहां, लेकिन तुम यह बताओ--हिंदुस्तान में जाना है कि पाकिस्तान में? पागल बड़ी मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहाः जब रहेंगे यहीं, तब जाने का सवाल ही क्या है? अधिकारियों ने कहाः तुम समझते नहीं, ये बड़ी गहरी गंभीर बातें हैं। तुम तो यह बताओ, तुम जाना कहां चाहते हों? उन्होंने कहाः हम जाना ही नहीं चाहते। अधिकारियों ने कहाः घबड़ाओ मत, रहना यहीं रहेगा, लेकिन फिर भी तुम कहां जाना चाहते हो? वे पागल कहने लगे, हम सोचते थे, हम पागल हैं, आप कब से पागल हो गए हैं? फिर कोई रास्ता न मिला। अब पागलों को समझाया न जा सका कि रहोगे यहीं, लेकिन हिंदुस्तान या पाकिस्तान चले जाओगे। तब फिर यह हुआ कि बीच से पागलखाना बांट दिया गया। तब पागलखाने के दो हिस्से हो गए। एक हिस्सा हिंदुस्तान में चला गया, एक पाकिस्तान में चला गया। बीच में एक दीवाल खींच दी गई। अब भी वह पागल कभी-कभी दीवाल पर चढ़ कर एक-दूसरे से बातें करते हैं और वे कहते हैं, बड़ी अजीब बात है। हम सब वहीं के वहीं हैं, सिर्फ एक दीवाल बीच में आ गई। हम हिंदुस्तान में हो गए, तुम पाकिस्तान में हो गए। कुछ समझ में नहीं आता। ये बाहर के पागल क्या करते रहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता!

हम और छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटते चले जाएंगे। राजनीतिज्ञ की ताकत हमें पागल बनाने में निर्भर है। जब वह हमें पागल बनाने में समर्थ हो जाता है तब उसमें ताकत आ जाती है। जब तक वह हमें पागल नहीं बना पाता, तब तक वह निहत्ता हैं, उसमें कोई शक्ति नहीं है। लेकिन राजनीतिज्ञ हमको किसी भी चीज पर पागल बना सकता है--हिंदू होने पर, मुसलमान होने पर, गुजराती-भाषी होने पर, मराठी-भाषी होने पर, ब्राह्मण होने पर, शूद्र होने पर, किसी भी तरह हमें पागल बना सकता है। राजनीतिज्ञ की ताकत हम किस मात्रा में पागल हो सकते हैं, इसी पर निर्भर है। अगर देश को एक करना है, तो देश के पागल होने की क्षमता कम करनी पड़ेगी। देश में सैनिटी बढ़ानी पड़ेगी, पागलपन कम करना पड़ेगा। हम छोटी-छोटी बातों पर इतने जल्दी पागल होते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। किसी ने खबर कर दी कि गाय की पूंछ कट गई, कुछ लोग पागल हो जाएंगे। अब गाय की अगर पूंछ कट भी गई हो तो भी दो-चार हजार लोगों को मरने और मारने की जरूरत समझ में नहीं आती। और हमारे बच्चे अगर कभी भविष्य में पढ़ेंगे तो बहुत हंसेंगे कि हमारे बापदादे सब पागल थे क्या? गाय की पूंछ कट गई तो चार हजार लोगों को मरने-मारने की क्या जरूरत थी? गाय की पूंछ कट गई थी तो इलाज करवा देना था, प्लास्टिक सर्जरी करवा देनी थी। गाय की पूंछ फिर से जुड़ सकती थी, लेकिन गाय की पूंछ पर

यह हो सकता है। एक पत्थर की मूर्ति का हाथ कट जाए तो हजारों लोग मर सकते हैं। औरतों के स्तन काटे जा सकते हैं, बच्चों की हत्या की जा सकती है, लोगों को आग लगाई जा सकती है।

अगर हम इस तरह पागल होने को तत्पर हैं तो यह देश इकट्ठा नहीं हो सकता। पागलपन तुड़वाता है। और राजनीतिज्ञ की ताकत--ध्यान रहे, हमें पागल बनाने में है। वह जितने दूर तक हमें पागल बना सकता है उतना शक्तिशाली रहेगा। जिस दिन हम पागल बनने से इनकार कर देंगे, एक बड़ी अदभुत घटना घटेगी, हमको राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा, जिस दिन हम पागल होने सें इनकार कर देंगे। हमें दिखाई पड़ेगा कि यह क्या पागलपन की बातें चला रखी हैं! राजनीतिज्ञ पागल मालूम होगा अगर जनता थोड़ी सैनिटी, थोड़ा स्वस्थ होने की कोशिश करे। राष्ट्र को एक करना हो तो उसे स्वस्थ करना होगा। उसके पागलपन के बुनियादी कारण हटाने पड़ेंगे।

अब एक मित्र ने पूछा है अभी कि आप कहते हैं कि कोई हिंदू न रहे, कोई मुसलमान न रहे, तो फिर शादी हो जाएगी और खून अशुद्ध मिल जाएगा, तो सब पतन नहीं हो जाएगा?

अब ये पागलपन की बातें हैं। खून सभी शुद्ध होता है, हिंदू का भी और मुसलमान का भी। एक मुसलमान का खून निकाल कर लेबोरेटरी में चले जाएं और अगर कोई डाक्टर बता दे कि यह मुसलमान का खून है तो आश्चर्य, मिरेकल समझना। कोई खून नहीं बताया जा सकता कि हिंदू का है, कि मुसलमान का है, कि ईसाई का है, कि ब्राह्मण का है, कि शूद्र का। खून सिर्फ खून है। खून शुद्ध और अशुद्ध नहीं होता, चमड़ी शुद्ध और अशुद्ध नहीं होती, हड्डियां शुद्ध और अशुद्ध नहीं होतीं। दो हड्डियां निकाल कर जांच नहीं की जा सकती कि ब्राह्मण की शुद्ध हड्डी कौन सी है और भंगी की अशुद्ध हड्डी कौन सी है? खून से कोई शुद्धता का संबंध नहीं है।

और आश्चर्य की बात यह है कि जितने निकट का खून होता है उतने ही अस्वस्थ बच्चे पैदा हो सकते हैं। जितना ही दूर का खून होता है उतने ही स्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं। हम भी मानते हैं, सामान्यतया अपनी बहन से हम शादी नहीं करते हैं। क्यों? क्या तकलीफ है? एक ही तकलीफ है कि खून बहुत करीब है और करीब खून से उतना टेंशन पैदा नहीं होता कि बच्चा स्वस्थ हो सके इसलिए दूर शादी करते हैं। बचाते हैं कि बहन से शादी न हो जाए, फासले पर शादी करते हैं। अगर बहन से शादी करने में बचाव करते हैं तो क्या उचित न होगा, और फासले पर शादी करने से और स्वस्थ बच्चे पैदा होंगे? अब तो प्राणीशास्त्री जानते हैं कि क्रास-ब्रीडिंग का कितना बेहतर परिणाम है। एक अंग्रेज सांड को ले आएं और हिंदू गाय से दोस्ती करवा दें तो जो बच्चा पैदा होगा, वह हिंदू बैल से कभी पैदा नहीं हो सकता। इतना फासले का ब्रीडिंग जब होता है तो स्वस्थ जानवर पैदा होते हैं।

आदमी के साथ भी नियम वही है। जितना फासले का संबंध होगा उतने स्वस्थ लोग पैदा होंगे। हिंदू-मुसलमान का संबंध ज्यादा अच्छा है बजाय हिंदू और हिंदू के। हिंदुस्तानी और चीनी का संबंध ज्यादा अच्छा है बजाय हिंदुस्तानी-हिंदुस्तानी के। एशिया के रहने वाले का संबंध योरोप के निवासी से ज्यादा बेहतर है बजाय एशिया के भीतर। और अगर किसी दिन हमने चांद-तारों पर कोई जाति खोज ली तो इंटरप्लेनेटरी विवाह जितने अच्छे होंगे उतने और कहीं नहीं हो सकते हैं। क्योंकि उस प्लेनेट पर करोड़ों वर्षों से जो विकास हुआ होगा और इस प्लेनेट पर जो विकास हुआ है, अगर एक लड़की और लड़का हिम्मत करके शादी कर लेंगे तो ये दोनों विकास की धाराएं मिल कर जिस बच्चे को पैदा करेंगे, वह दोनों विकास की धाराओं का वंशज होगा। वह उतना ही कीमती, समृद्ध बुद्धि और शरीर लेकर पैदा होगा।

मगर हमें पागल बनाने की तरकीबें हैं कि खून... शुद्ध खून खोजना चाहिए। शुद्ध खून का कोई मतलब ही नहीं होता है। बीमार खून और स्वस्थ खून होता है, लेकिन शुद्ध और अशुद्ध खून नहीं होता है। कोई खून शुद्ध नहीं है खून की तरह; सभी शुद्ध हैं या सभी अशुद्ध हैं। चमड़ी के फासले बनाए हुए हैं कि गोरी चमड़ी और सफेड़ चमड़ी। और पता है कि यह फासला कितना होता है? एक पिगमेंट होता है छोटा सा, जो काली चमड़ी को काला बना देता है--और मुश्किल से छटांक का चौथाई हिस्सा। उतना पिगमेंट जिसके शरीर में होता है उसकी चमड़ी काली हो जाती है; उतना नहीं होता है तो गोरी हो जाती है। वह जो चौथाई छटांक का हिस्सा है पिगमेंट का, वह भी इसलिए है कि ज्यादा और कम धूप भीतर ले जाई जा सकें। काली चमड़ी इसलिए हैं कि जहां बहुत धूप हैं, वहां चमडी रोके धूप को, भीतर ना जाने दें। काली चमड़ी प्रोटेक्टिव है, सुरक्षा करती है, भीतर धूप को नहीं जाने देती है। सफेद चमड़ी--सर्द हो जगह तो ठीक है, गर्म जगह हो तो बड़ी गलत है। वह धूप को भीतर घुस आने देती है और मुश्किल में डाल देती है। काली और सफेद चमड़ी में कुछ ऊंचा और नीचा नहीं है।

आप बाजार में निकलते हैं, काला छाता लगा कर। सफेद छाता लगा कर नहीं निकल जाते हैं--क्यों? सफेद छाता बेमानी है क्योंकि काला छाता रोशनी को रोकने का काम करता है, किरणों को वापस लौटा देता है। सफेद छाता सब किरणों को पी जाता है। उस काले छाते में काला पिगमेंट है, जो किरणों को वापस भेज देता है। वह काला छाता हम लगाते हैं बिना फिकर किए--कि काला क्यों लगाएं, सफेद छाता लगाएं! गोरा छाता बहुत अच्छा होगा, लेकिन धूप में काला छाता ही बेहतर है। जहां गर्म मुल्क हैं, श्रम करने वाले लोग हैं--जिन्हें दिन भर धूप में रहना है, उनकी चमड़ी अगर काली न होगी तो वे जिंदा नहीं रह सकते।

लेकिन किसने कहा कि काली चमड़ी सुंदर नहीं होती है? काली चमड़ी का अपना सौंदर्य है, सफेद चमड़ी का अपना सौंदर्य है। कोई नीचा-ऊंचा नहीं है। कोई नीचा-ऊंचा नहीं है! हमने कृष्ण को काला बनाया है। कृष्ण का मतलब ही काला है, सांवला। और हमने काला इसलिए बनाया है कि हमने काले के रंग का सौंदर्य भी समझा है। सच बात यह है कि गोरे रंग में एक विस्तार होता है लेकिन गहराई नहीं होती, काले रंग में गहराई होती है जो गोरे रंग में नहीं होती है। गोरे रंग में एक हमला होता है, गोरा रंग एग्रेसिव है, हमलावर है। अगर सड़क से गोरा रंग निकल जाए तो हमें देखना ही पड़ता है, वह आक्रामक है, हिंसात्मक है। काला रंग अनाक्रामक है, वह हमला नहीं करता है। आपको देखना हो तो देखें, प्रतीक्षा करता है, वेट करता है, अहिंसात्मक है। वह काला रंग जो है, वह हिंसा नहीं करता है। देखा है, नदी जब गहरी हो जाती है तब सांवली हो जाती है, उथली होती है तो सफेद हो जाती है। गहराई आ जाती है नीले रंग में। आकाश नीला दिखाई पड़ता है बहुत गहराई के कारण, और कोई कारण नहीं है। काले रंग में एक गहराई है। काले रंग का अपना सौंदर्य है, सफेद रंग का अपना सौंदर्य है। लेकिन कौन कहता है कि सफेद अच्छा और काला बुरा है। जब कोई ऐसा कहता है तो भूल की बातें करता है। गलत बातें करता है और इस तरह से पागलपन पैदा होता है।

अब अमरीका में पागलपन है कि नीग्रो को मारो, क्योंकि वह काला है। बड़ी अजीब बात है। हिंदुस्तान में भी वही है। हमने तो वर्ण की जो व्यवस्था की, वह कलर पर निर्भर है। वर्ण का मतलब रंग। असल में काले रंग के लोगों को हमने शूद्र बना दिया है, नीचे धक्का दे दिया है। वर्ण का मतलब है रंग। वह भी रंग के आधार पर तय हुआ था कभी। गोरी चमड़ी के लोग ऊपर बैठ गए, वह ब्राह्मण हो गए, क्षत्रिय हो गए, वैश्य हो गए। काली चमड़ी के लोगों को उन्होंने नीचे धक्के देकर शूद्र बना दिया, अस्पृश्य बना दिया कि छूने योग्य नहीं है। वह रंग का ही विभाजन था। लेकिन रंग से कोई संबंध है? काले रंग का अपना आनंद है, सफेद रंग का अपना आनंद है।

फिर स्वार्थ-स्वार्थ की बात है। किसी को काला रंग अच्छा लग सकता है, किसी को सफेद रंग अच्छा लग सकता है। लेकिन इसमें कोई वैल्युएशन नहीं हो सकता है, इसमें कोई ऊंचा-नीचा नहीं है। इसमें कोई नीच और ऊंच नहीं है। यह सब पागलपन हैं, छोड़ने पड़ेंगे। वर्ण का पागलपन छोड़ना पड़ेगा, जाति का पागलपन छोड़ना पड़ेगा, धर्म का पागलपन छोड़ना पड़ेगा तो देश राजनीतिज्ञ के हाथ से अभी मुक्त हो जाए। और देश अगर राजनीतिज्ञ के हाथ से मुक्त हो जाए तो देश सदा एक है, देश को बांटा कहां है?

बंटा कहां है देश? सच तो यह है कि अगर सारी दुनिया राजनीतिज्ञों से मुक्त हो जाए तो पूरी मनुष्यता एक है। इसलिए मुझसे यह मत पूछें कि देश को एक कैसे करें। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि देश को अनेक करने की तरकीबें भर पहचान लें और उन तरकीबों में न फंसें, देश एक हो जाएगा।

जैसे मैंने यह मुट्ठी बांधी और मैं किसी से जाकर पूछूं कि यह मुट्टी कैसे खोलूं? तो वह आदमी कहेगा कि खोलने का कोई सवाल ही नहीं है। कृपया करके बांधें मत। मुट्ठी अपने से खुल जाएगी। मुट्ठी को खोलना नहीं पड़ता है, बांधना पड़ता है। बांधना क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है। शब्द में मालूम पड़ता है, खोलना क्रिया है। खुलना अपने से हो जाता है। खुलना स्वभाव है। एक होना मनुष्य का स्वभाव है। बंटना, खंडित होना हमारी तरकीब है। बहुत व्यवस्था और मेहनत से बंटना पड़ता है। अगर हम न बटें तो हम एक तो अभी हो जाएंगे। अगर मैं अपनी लड़की को न समझाऊं कि तू हिंदू है और मेरा पड़ोसी अपने लड़के को न समझाए कि तू मुसलमान है, तो उनको प्रेम से रोकने वाला कोई न होगा। वे आपस में पास आ सकते हैं और प्रेम कर सकते हैं। लेकिन मैं समझा रहा हूं कि तू हिंदू है और उसका आदमी समझा रहा है कि तू मुसलमान है। हम दीवालें खड़ी कर रहे हैं बीच में। वे लड़की और लड़के के बीच एक फासला खड़ा कर रहे हैं, वह करीब न आ सकेंगे, उनके बीच एक सख्त दीवाल खड़ी हो गई है।

नहीं, यह मत पूछिए कि एक कैसे हों, इतना ही पूछिए कि अनेक कैसे हो गए हैं? और अनेक होने की तरकीब समझ लीजिए और उससे मुक्त हो जाइए। एकता स्वाभाविक रूप से फलित हो जाएगी। मनुष्य एक है, शैतानों ने उसे अनेक किया हुआ है। वे बड़े मेहनती हैं। शैतान सदा से मेहनती हैं। वह भारी श्रम करके अनेक करते हैं। वे दिन-रात चेष्टा में लगे हैं कि आदमी को कैसे तोडें। और जब शैतान देखता है कि अब तोड़ना इतना ज्यादा हो गया है कि आदमी घबड़ाता है तो शैतान ही नई शक्ल लाकर कहता है कि सब एक हो जाओ। भाइयो, हिंदू-मुलसमान सब भाई बन जाओ। वह देखता है कि अब तोड़ा नहीं जा सकता है आगे, तो एक करने की बात करो। थोड़ा लोग रिलैक्स हो जाएं, फिर तोड़ो। फिर तोड़ने की बात करो।

एक सज्जन ने पूछा है कि हिंदू और मुसलमान एक क्यों नहीं हो सकते हैं?

हिंदू-मुसलमान हैं इसीलिए एक नहीं हो सकते। आदमी-आदमी एक हो सकता है, हिंदू-मुसलमान एक नहीं हो सकते। वह हिंदू-मुसलमान होने का बोध ही उन्हें दो कर रहा है और अगर वे चेष्टा करके एक भी हो जाएं--जैसा कभी-कभी होता है, गले मिलने का भी तो इन्तजाम करते हैं न--कि हिंदू-मुसलमान गले मिल रहे हैं, फोटो उतर जाती है, अखबार में छप जाती है, बस इससे ज्यादा "एक" कुछ भी नहीं होता है। वह जो गले मिले थे, दूसरे दिन फिर छुरे खींच लेते हैं। वह जो एक होने की बात है, उसकी बुनियाद में हमने मान रखा है कि अनेक को हम स्वीकार करते हैं। हम हिंदू को हिंदू मानते हैं, मुसलमान को मुसलमान मानते हैं।

यह बड़े मजे की बात है, कोई बच्चा हिंदू की तरह पैदा होता है कि कोई बच्चा मुसलमान की तरह पैदा होता है? बच्चे सिर्फ आदमी की तरह पैदा होते हैं। पुरानी पीढ़ी उनको बिगाड़ने का उपाय करती है। और सिखाना शुरू करती है कि तुम यह हो। उनमें जहर डालती है। और जहर डाल कर बड़े होते-होते तक उनको

पक्की तरह से हिंदू-मुसलमान बना देती है। अगर मैं हिंदू हूं और मेरे घर में एक बच्चा पैदा हो और मैं मुसलमान मित्र को दे दूं और वह मुसलमान के घर बड़ा हो, तो क्या अपने आप वह बच्चा कभी भी पता लगा पाएगा कि वह हिंदू है? कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय ही नहीं है। उस बच्चे को कभी भी पता नहीं चलेगा क्योंकि बच्चा कोई होता ही नहीं। बच्चा तो खाली होता है बिना लेबल के। लेबल हम लगाते हैं। बच्चा कोई लेबल लेकर नहीं आता है, वह सिर्फ आदमी की तरह आता है। फिर हम लेबल लगाते हैं और लेबल लगाने से उपद्रव शुरू हो जाते हैं।

नहीं, लेबल लगाने बन्द करने पड़ेंगे। जो बाप अपने बेटे को प्रेम करता हो, कृपा करके उस पर लेबल न लगाएं। जो मां अपने बेटी को प्रेम करती है वह कृपा करके उस पर लेबल न लगाए। अगर हम यह तय कर लें कि हम अपने बच्चों को लेबल नहीं लगाएंगे और लगे-लगाए लेबल को उखाड़ कर फेंक देंगे तो कौन है, जो हमें अलग करेगा? कोई हमें अलग करने को नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि मैं कहता हूं कि आप गीता न पढ़ें, कुरान न पढ़ें। मैं मुसलमान नहीं हूं, मैं कुरान पढ़ता हूं। मैं हिंदू नहीं हूं, मैं गीता पढ़ता हूं। मैं ईसाई नहीं हूं, मैं बाइबिल पढ़ता हूं। मुझे कौन रोकता है? सच बात तो यह है कि जब मैं कोई न रह जाऊंगा तो मैं निष्पक्ष मन से गीता, कुरान, बाइबिल तीनों को पढ़ सकूंगा। जब तक मैं मुसलमान हूं, तब तक मैं कुरान एक ढंग से पढ़ता हूं, और गीता दूसरे ढंग से पढ़ता हूं। जब तक मैं हिंदू हूं तब तक गीता को मैं पवित्र ढंग से पढ़ता हूं और कुरान को ऐसे पढ़ता हूं जैसे--जैसे स्टेप-मदर, दूसरी मां, दूसरे के बेटे को देखती है। स्टेप-मदरली ढंग से पढ़ता हूं। उसको मैं ऐसे नहीं पढ़ता, जैसे गीता को पढ़ता हूं। नहीं, जिस दिन मैं कोई नहीं हूं उस दिन मैं सबको पढूंगा। उस दिन सारी दुनिया की संस्कृति का, सारा अतीत... का मैं वारिस हो जाऊंगा। अभी मैं सारी दुनिया की संस्कृति का वारिस नहीं हूं। अभी मैं एक धारा का वारिस हूं। जब मैं सारी दुनिया का वारिस हो जाऊंगा तब जीसस से मुझे कुछ सीखना है तो मैं मुक्त हूं, और मोहम्मद से कुछ सीखना है तो मैं बंधा नहीं हूं और कृष्ण से मुझे कुछ सीखना है तो मेरे मन के द्वार खुले हैं। मैं सबसे सीख सकूंगा। सारी दुनिया का सारा अनुभव मेरा हो जाएगा।

क्या हमारे बच्चे ज्यादा समृद्ध न हो जाएंगे अगर वे सिर्फ आदमी हो जाएं? नहीं, हम उन्हें दरिद्र बनाते हैं क्योंकि हम उन्हें हिंदू बना देते हैं, मुसलमान बना देते हैं। और हमारा लेबल का मोह इतना गहरा है कि उसके कारण हम करीब-करीब अंधे हो जाते हैं, हम दूसरे की तरफ कभी देखते ही नहीं। अब जीसस जैसे प्यारे आदमी को पढ़ने से हम वंचित रह जाएंगे क्योंकि हम ईसाई नहीं हैं। अब जीसस जैसा आदमी बहुत अदभुत है। उससे जो वंचित रह गया, वह दुनिया के बहुत बड़े महत्वपूर्ण धन से वंचित रह गया। मोहम्मद की अपनी शान है--जो उनसे वंचित रह गया, वह एक बहुत प्यारे आदमी को जानने से वंचित रह गया। जिसने कृष्ण को नहीं जाना, वह चूक गया, अक हीरे से चूक गया, जो मुफ्त में मिल सकता था। जो महावीर को प्रेम नहीं कर पाया, उसकी जिंदगी में, उसकी आत्मा में कुछ कमी रह जाएगी। जिसने बुद्ध के चरणों में बैठ कर थोड़ी देर राहत की श्वास न ली, उसकी शांति में कुछ कमी रह जाएगी।

और मजा यह है कि इनमें से जो एक दे सकता है वह दूसरा नहीं दे सकता। वे सब यूनिक हैं, वे सब बेजोड़ हैं। बुद्ध कुछ और दे सकते हैं, महावीर कुछ और, मोहम्मद कुछ और--जीसस कुछ और, जरथुस्त्र कुछ और। लेकिन अब तक हमने अपने बच्चों को एक धारा से जोड़ कर बाकी दुनिया की धारा से वंचित किया है। भविष्य में एक नागरिक पैदा करना है जो विश्व का नागरिक हो तो हमें धर्मों से, जातियों से, रंगों के पागलपन से मुक्त होना पड़े और तब हम एक हैं। एक होना हमारा स्वभाव है। अनेक हम किए गए हैं तरकीब से। तरकीब से हम सावधान हो जाएं, हमें एक होने से कोई भी नहीं रोक रहा हैं।

एक-दो छोटे प्रश्न और।

एक मित्र ने पूछा हैः वह भी एक जीवित सवाल है। हिंदुस्तान में साधु-संन्यासी, सज्जन जिनको हम कहें, वे सब आधुनिकता के बड़े विपरीत हैं। वे कहते हैं, आधुनिक हुए तो अपना सब खो जाएगा, भारतीय न रह जाओगे। अतीत की संपदा है, वह खो जाएगी। वे कहते हैं कि आधुनिक होने से बचना, अन्यथा अपनी संस्कृति खो जाएगी।

असल में जो संस्कृति जिंदा होती है, वह आधुनिक होकर ही बचती है। आधुनिक होकर खोती नहीं हैं। सिर्फ जिस संस्कृति को मरना हो वहीं आधुनिक होने से बचती सकती है। जैसे मैंने कल भी श्वासें ली थीं और अगर मैं यह सोचूं कि अगर मैं आज भी श्वास लूंगा तो कलवाला आदमी मर जाएगा, तो फिर मैं मरूंगा। मुझे आज श्वास लेनी पड़ेगी। तो ही मैं जिंदा रह सकता हूं। आधुनिकता का मतलब है कि आज वर्तमान में श्वास लेने की क्षमता। और जिंदगी रोज बदलती जाती है, जिंदगी को रोज आधुनिक होना पड़ता है। उसे रोज नये कदम उठाने पड़ते हैं, उसे नये रास्तों पर चलना पड़ता है, नई बातें सीखनी पड़ती हैं, नये वातावरण, नये माहौल से समायोजित होना पड़ता है। भारत एक अगर कसम लेकर बैठ जाए कि हम तो सब पक्के वही रहेंगे, जो हम पीछे थे, हम तो अपनी चोटी बढ़ा कर रखेंगे, नहीं तो भारतीय नहीं रह जाएंगे, हम तो जनेऊ पहनेंगे नहीं तो भारतीय नहीं रह जाएंगे... ।

और यह छोटे-मोटे भारतीय का मामला नहीं है, जिनको हम बड़े-बड़े भारतीय कहते हैं, उनकी बुद्धि भी उतनी ही छोटी होती है। उसमें कोई बड़ा फर्क नहीं होता है। मदनमोहन मालवीय जैसा आदमी अंग्रेज से हाथ मिलाने में डरते थे कि कहीं अपवित्र न हो जाएं। जो कौम इतनी घबड़ाई हुई हो जाएगी कि किसी से हाथ न मिला सके, उस कौम का कोई भविष्य नहीं हो सकता। इंग्लैंड गए थे गोलमेज कांफ्रेंस में, तो गंगाजल साथ में ले गए थे पीने के लिए। थेम्स नदी का जल जो है, वह भगवान का बनाया हुआ नहीं है। वह गंगा ही का जल भगवान ने बनाया हुआ है। वह गंगा का जल उनको जाता रहा पीने के लिए। क्या पागलपन है? ऐसी कौम जिंदा नहीं रह सकती है। इधर शंकर जी की पिंडी छिपाए हुए थे पगड़ी में भीतर, जिससे शंकर जी रक्षा करते रहें। कोई अपवित्र छू न जाए। ऐसे आदमी के साथ शंकर जी भी अपवित्र हो जाएंगे। जो ऐसा अपवित्रता से डरा हुआ है, वह जिंदा कैसे रहेगा? यह आदमी जिंदा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है। पूरी कौम हमारी ऐसी हो गई है, तो हम ऐसे डर गए और हम अपनी प्राचीनता को किसी भी तरह घसीटने के लिए कुछ भी दलीलें दिए चले जाते हैं।

मैंने एक किताब पढ़ी। एक सज्जन ने वह किताब लिखी है। हिंदू धर्म वैज्ञानिक है, उसने सिद्ध किया है। उसने बड़े मजे की बातें लिखी है। इतने मजे की बातें कि पश्चिम के वैज्ञानिकों को पता चल जाए तो उनको भी बड़ा लाभ हो। उसने लिखा है कि हमने चोटी क्यों बढ़ाई, उसका वैज्ञानिक कारण है। जैसे कि मकानों के ऊपर लोहे के डंडे लगाते हैं बिजली गिराने को, जिससे बिजली का असर न हो। हम बड़े वैज्ञानिक थे। हमने चोटी बांध कर खड़ी कर ली थी जिससे बिजली पार हो जाए। हमारी चोटी की वैज्ञानिकता सिद्ध कर रहे हैं। हम सारी दुनिया में अपने को हंसी-योग्य सिद्ध कर लेने में लगे हैं। हम पागलपन में लगे हैं। इस भांति हम जिंदा न रह सकेंगे। उस किताब में लिखा है, खड़ाऊं हिंदू क्यों पहनते हैं। नस दब जाती है पैर की, उस नस के दबने के कारण आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। तो वैसी नस को पैर से काट ही डालो तो बड़ा अच्छा हो जाए!

उसको दबा ही दो। अब तो दबाने के बड़े उपाय हैं, खड़ाऊं पहनने की जरूरत नहीं है। नस को दबा ही दो, नसबंदी बहुत अच्छी होगी। यह इस तरह की नसबंदी बहुत अच्छी हो जाएगी, बर्थ-कंट्रोल के लिए बड़े फायदे की होगी। हम अपनी व्यर्थता को भी आधुनिक ढांचा पहनाने में उत्सुक हैं।

नहीं, जो व्यर्थ है उसे छोड़ना पड़ेगा और अगर उसे हम नहीं छोड़ें तो उसके साथ हम मूढ़ बनते हैं। हम सारे जगत में हंसने योग्य हुए चले जा रहे हैं। हम व्यर्थ ही अपने आप हंसने योग्य बनने की कोशिश में लगे हैं। हमें आधुनिक होना पड़ेगा। आधुनिक होना जीवन का धर्म है। आधुनिक होने का मतलब है कि जो आज है जिंदगी" हमें उसके योग्य होकर खड़ा होना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है--आधुनिक होने का मतलब पाश्चात्यीकरण नहीं हैं। मॉर्डनाइजेशन का मतलब वेस्टर्नाइजेशन नहीं है। पाश्चात्यीकरण की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन आधुनिकीकरण तो करना ही पड़ेगा। जिंदगी को सब तरफ से नया करना पड़ेगा। नहीं करेंगे तो हम मरेंगे। किसी और को उससे नुकसान नहीं होगा।

एक मित्र ने पूछा है कि सभी साधु-संत फिल्मों के विरोध में है। आपका क्या कहना है?

यह अंतिम प्रश्न। इस संबंध में बात कर लेनी उचित है क्योंकि इधर भारत में ऐसा समझा जा रहा है कि फिल्मों के कारण लोग बिगड़े जा रहे हैं। यह बिल्कूल उल्टी बात है। बिगड़े हुए लोगों की वजह से अच्छी फिल्में बनाना मुश्किल हो रहा हैं। फिल्मों की वजह से कोई नहीं बिगड़ रहा है। कोई फिल्म किसी को बिगाड़ नहीं सकती, लेकिन लोग अगर बिगड़े हों तो अच्छी फिल्म को चलाना मुश्किल है, कठिन है। और फिल्म एक अर्थ में बहुत बड़ा काम कर रही है। फिल्म एक अर्थ में बड़ा काम यह कर रही है, कि जो काम आप करना चाहते हैं, और नहीं कर पाते, वह फिल्म में देख कर राहत मिलती है। और शांति से घर लौट आते हैं। अगर फिल्में न हों तो आप यह काम सड़कों पर खड़े होकर करेंगे और उपद्रव बढ़ेगा, कम नहीं होगा--इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं।

अगर फिल्म में एक आदमी डिटेक्टिव फिल्म देखता है और हत्या की घटना देखता है और एक कार को दौड़ते देखता है और उसके पीछे पुलिस को लगे देखता है तो जब तेज गति हो जाती है तो आपने देखा है कि फिल्म के सारे लोगों की रीढ़ सीधी हो जाती है, फिर कोई कुर्सी से टिका नहीं रह जाता। उनके भीतर भी कुछ हो रहा है, वे भी तैयार हो गए हैं, जैसे कार की स्टेयरिंग पर वे खुद ही बैठे हों। उनके हाथ-पैर तैयार हो गए हैं, श्वास बंद हो गई है, पलकों ने झपकना बंद कर दिया। एक क्षण चूक जाएं तो चूक जाएं। इतने थ्रिल में उनके भीतर जो उत्तेजना की आकांक्षा है, वह तृप्त हो जाती है। अगर फिल्में अलग कर दी जाएं तो यह उत्तेजना हमें और रास्तों से लानी पड़ेगी। विनोबा जी, आचार्य तुलसी और इस तरह के लोग फिल्मों के बड़े विरोध में हैं। वह कहते हैं, फिल्में अश्लील हैं और अश्लील फिल्में नहीं होनी चाहिए। और मैं आप से कहता हूं, अश्लील फिल्मों के कारण आदमी कम अश्लील है। अगर फिल्में अश्लील न हों तो आदमी को अश्लील होना पड़ेगा।

और कौन कहता है कि फिल्मों की वजह से अश्लीलता है? कालिदास ने तो फिल्म नहीं देखे थे, जहां तक मेरा खयाल है। लेकिन अगर उनके नाटक पढ़ें तो आज की कोई फिल्म उतनी अश्लील नहीं है, जितना कालिदास रहे होंगे। कालिदास जंगल में भी जाएं तो फलों में उन्हें फल नहीं दिखाई पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही दिखाई पड़ते हैं। तो यह दिमाग फिल्म से बिगड गया था? कालिदास का दिमाग फिल्म ने खराब किया था? यह खजुराहो के मंदिर कोई फिल्म एक्टरों ने खोदें हैं? खजुराहो के मंदिरों पर मैथुन के चित्र किसने खोदे हैं? यह तो

आज के नहीं है। काम-सूत्र किसने लिखा है? यह तो आज का नहीं है और भर्तृहरि केशृंगार-शतक किसने रचे हैं? यह तो इसमें फिल्म प्रोड्यूसर का इसमें कोई भी हाथ सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आदमी जो चाहता रहा है हमेशा से वह अलग-अलग माध्यम में उसे देना पड़ा है। आदमी बदले तो बदलाहट हो सकती है, माध्यम बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। अब वे कहते हैं कि नग्न तस्वीरें न हों, लेकिन आदमी नग्न तस्वीरें देखना चाहता है।

मैं दिल्ली में था। साधुओं ने एक जलसा किया था अश्लील पोस्टरों के खिलाफ भूल से वह मुझे भी बुला ले गए। कई लोग भूल से मुझे बुला लेते हैं फिर पीछे बहुत पछताते हैं। उन्होंने समझा, के मैं भी अश्लील पोस्टर के खिलाफ में... अश्लील पोस्टर के खिलाफ में कौन न बोलेगा? तो मैं बड़ा हैरान हुआ। मैंने उन साधुओं से कहा कि पहली तो बात यह है कि आप साधु हो, आप अश्लील पोस्टर देखने गए कहां, आप किसलिए गए? तुम्हें किसी ने बुलाया था अश्लील पोस्टर देखने को? तुम किसलिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हो, तुम्हें क्या परेशानी है? उन्होंने कहा कि हम तो इसलिए देखने जाते हैं कि लोग उनको देख कर बिगड़ न जाएं। कुछ लोग ऐसे हैं, अगर आप सिनेमा में पकड़ जाएं और विद्यार्थी हैं तो आपका शिक्षक आपको समझाएगा और अगर शिक्षक पकड़ा जाए तो वह कहेगा कि हम जरा देखने आए थे कि कौन-कौन विद्यार्थी आए थे। बहुत मजे की बातें हैं, यह साधु पोस्टर देखने जाते हैं, बेचारे--कृपा करके कि दूसरे लोग न बिगड़ जाएं और सच बात यह है कि साधु जितनी नग्न तस्वीरें देखना चाहता हैं उतना कोई भी नहीं देखना चाहता हैं। क्योंकि साधु ने जिंदगी से अपने को तोड़ लिया है। उसकी आकांक्षाएं भीतर दबी रह गई हैं।

एक संन्यासी मेरे पास मेहमान थे तो मैंने यह घटना वहां कही। वह संन्यासी मेरे पास रहे दो-चार दिन, निकट से बातें कीं तो फिर वह सच्चा बोल सके। साधु से सच्ची बातें निकलवानी बहुत कठिण हैं क्योंकि उसे झूठी जिंदगी जीनी पड़ती है। वह सच्ची बात नहीं कह सकता हैं। मेरे पास रहे, धीरे-धीरे उनको लगा कि नहीं, सच्ची बात कही जा सकती है। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि मैं नौ साल का था तब मैं साधु हो गया। मेरे पिता दीक्षित हुए और घर में कोई न था, मां मर गई थी इसलिए पिता दीक्षित हुए होंगे। स्त्रियां जिंदा रहें तो भी साधुता की प्रेरणा देती हैं और मर जाएं तो भी। जिंदा स्त्रियों से भी कई लोग भाग कर साधु होते हैं और कुछ लोग मरी हुई स्त्रियों की वजह से साधु होते हैं। पिता साधु हो गए। मां मर गई। अब बेटा कहां जाए? तो उन्होंने उसे भी दीक्षा दे दी। नौ साल के बच्चे को दीक्षा दे दी। अब उन संन्यासी की उम्र बावन वर्ष है। बावन्न वर्ष का साधु है वह, लेकिन उनकी बुद्धि नौ वर्ष पर रुक गई है, उससे आगे नहीं बढ़ी। बढ़ भी नहीं सकती क्योंकि जिंदगी से अलग खड़े हो गए। तो उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे मन में सदा होता है कि टॉकीज से बाहर इतनी भीड़ रहती है, भीतर होता क्या है? कभी मैं भीतर नहीं गया और आपसे मैं दिल की बात कह सकता हूं। ऐसा नहीं हो सकता है, कि, कोई तरकीब से मैं टॉकीज के भीतर जाकर एक दफा देख लूं कि वहां हो क्या रहा है। इतनी भीड़ लगी रहती है। मंदिर के सामने तो क्यू लगता ही नहीं, कोई आता ही नहीं। मगर वहां पैसा दे-दे कर लोग खड़े हैं, मुश्किल से टिकट मिलती है, फिर भी भीतर जाते हैं। वहां भीतर हो क्या रहा है?

हमें समझ में नहीं आएगी उनकी तकलीफ, क्योंकि हमने भीतर जाकर देखा है। उनकी तकलीफ वही समझ सकतें हैं। मैंने कहाः मैं भिजवा देता हूं। पड़ोस से एक मित्र को बुलवाया। उन्हीं की जाति के वहे संन्यासी थे। उन मित्र से मैंने कहाः मुझे तो तीन घंटा खराब करने का समय नहीं हैं। आप इन्हें किसी फिल्म में ले जाएं। उन्होंने कहा माफ करिए, अगर किसी ने मुझे देख लिया कि साधु महाराज को फिल्म दिखला रहा हूं तो मैं तक परेशानी में पड़ जाऊंगा। उन्होंने कहा कि मैं कंटोनमेंट एरिया में ले जा सकता हूं, वहां हमारी जाति का कोई भी नहीं है। मगर वहां अंग्रेजी फिल्म चलती है। साधु अंग्रेजी नहीं जानते। पर उन साधु ने कहाः कोई हर्जा नहीं, देख

तो लेंगे। समझेंगे नहीं तो कोई बात नहीं अंग्रेजी ही सही। वह बेचारे जब रात अंग्रेजी फिल्म देख कर लौटे तो उनके मन से जैसे बोझ उतर गया। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं हलका हो गया। मेरे मन में मोक्ष जाने की इतनी आकांक्षा न थी जितनी टॉकीज के भीतर जाने की थी। और अगर मैं मर जाता इसी आकांक्षा को लेकर तो पता नहीं टॉकीज में डोर-कीपर की जगह पैदा होता अगले जन्म में, या क्या होता!

मैंने उन संन्यासीयों से कहाः आप क्यों परेशान हैं अश्लील पोस्टरों से? और ध्यान रहे, आदमी नग्न स्त्री को देखना चाहता है। क्यों? बजाय पोस्टर को मिटाने के यह सोचना जरूरी है कि आदमी नग्न स्त्री में इतना उत्सुक क्यों है? उत्सुकता का कारण क्या है? और कारण साधु-संतों ने ही दिया है। कारण यह है कि हम स्त्री-पुरुष को इतने दूरी पर खड़ा करते हैं कि करीब-करीब वे एक जाति के प्राणी नहीं, दो जाति के अलग जानवर हो जाते हैं। अलग-अलग खड़ा करके इतने फासले को बड़ा करते हैं कि एक दूसरे को जानने की उत्सुकता शेष रह जाती है। और फासले इतने ज्यादा होते हैं कि जानने का मौका ही नहीं मिलता है एक-दूसरे को कि जान पाएं, परिचित हो पाएं। अगर लड़के और लड़कियों को करीब और निकट खड़ा किया जा सके, वे एक-दूसरे के साथ खेलते हों, दौडते हो, तैरते हों तो अश्लील पोस्टर धीरे-धीरे विदा हो जाएंगे।

अभी मैंने एक घटना पढ़ी। सिडनी में एक नग्न अभिनेत्री को लाया गया प्रदर्शन के लिए। बीस लाख की आबादी का गांव है। बहुत प्रचार किया लेकिन दो आदमी टाकीज में देखने गए, सिर्फ दो आदमी। अहमदाबाद में कितने आदमी जाते, सोच सकते हैं? अगर दो आदमी भी पीछे रह जाते तो चमत्कार है। सभी लोग जाते--जाना ही पड़ता। इसमें कोई उपाय न था। कोइ विकल्प नहीं था। हां, इतना फर्क पड़ता कि कुछ लोग सामने के दरवाजे से जाते, कुछ सज्जन लोग पीछे के दरवाजे से जाते। यह फर्क पड़ सकता था, लेकिन जाना तो पड़ता। दो आदमी देखने आए सिडनी में, एक मिरेकल है, चमत्कार है। एक नग्न सुंदरी का नृत्य हो रहा हो और पूरी टॉकीज खाली हो और दो आदमी देख रहें हैं, यह बात क्या है? सिडनी में क्या बात हो गई है? स्त्रीयां और पुरुष इतने निकट खड़े हो रहे हैं कि यह बात बेहूदी है, अगर हम यह घोषणा करें कि एक आदमी का नंगा हाथ दिखाया जाएगा तो आप देखने जाएंगे? नहीं देखने जाएंगे, क्योंकि नंगे हाथ तो देख चुके हैं और कोई कारण नहीं है।

लेकिन एक जमाना ऐसा था--बर्ट्रेंड रसल ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि एक जमाना ऐसा था कि इंग्लैंड में विक्टोरियन एज में स्त्रियां इतना बड़ा घाघरा पहनती थीं कि उनका पैर का अंगूठा भी नहीं दिखाई पड़ता था। पैर का अंगूठा भी नहीं दिखाई पड़ता था! घाघरा चारों तरफ जमीन को छूता था। तो बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि उस जमाने में बड़ी अजीब बात थी कि अगर किसी स्त्री का पैर का अंगूठा दिख जाए तो बड़ी रस-विमुग्धता पैदा हो जाती थी। चित्त रसमग्न हो जाता था, काव्य का झरना बहने लगता था, एकदम कविता निकलने लगती। पैर का अंगूठा देख कर! अब हम हसेंगे कि पैर का अंगूठा देख कर कविता निकलती थी! पागल हो गए हैं। अब तो पैर के अंगूठे सब तरफ दिखाई पड़ रहे हैं, कोई कविता नहीं निकलती। सिडनी में नंगी स्त्री को देख कर भी कोई कविता नहीं निकली। हिंदुस्तान में अभी भी निकलती है।

अश्लील फिल्म बनानी पड़ती है, अश्लील पोस्टर लगाना पड़ता है। हमारी मांग है। और अगर अश्लील पोस्टर न लगेगा और नंगी फिल्म न होगी तो खतरा है। हम सड़क पर स्त्री को वस्त्र पहने चलने देंगे या न चलने देंगे। हम उसके वस्त्र छीन सकते हैं। स्त्रियां सड़क पर निर्वस्त्र नहीं की जा रही हैं क्योंकि निर्वस्त्र स्त्रियों को देखने की टॉकीज में व्यवस्था है, नहीं तो खतरा पूरा है। यह जो हमारे मन की मांग है उसको पूरा करंगे। और हम कर भी लेते हैं। मौका मिलता है तो फिल्म पर हम निर्भर रहते भी नहीं हैं। वह तो मौका नहीं मिलता है तब तक हम फिल्म पर निर्भर रहते हैं। मौका मिल जाए, हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए, फिर हम फिल्म की फिकर करते

हैं? फिर हमे जो स्त्री मिल जाए, नंगी कर लेते हैं। हम कर लेंगे। वह हमारे भीतर है। साधु-संन्यासी उससे छुटकारा नहीं दिला सकते क्योंकि वे ही उस वृत्ति को जन्माने में मूलभूत कारण हैं। स्त्री और पुरुष को निकट लाना पड़ेगा, सरलता से निकट लाना पड़ेगा। वे जितने निकट आ जाएंगे उतने ही उनके फासले से पैदा हुई बीमारियां दूर हो जाएंगी।

भारत में जलता हुआ प्रश्न वह भी है। विशेषकर युवकों के सामने बहुत बड़ा सवाल है। वे बड़ी कठिनाई में पड़ गए हैं। पुरानी सारी व्यवस्था उनकी निंदा करती है और उनके चित्त और उनकी शिक्षा उन्हें मुक्त करने की व्यवस्था करती है। वे बहुत कठिनाई में हैं। कल उस संबंध में मैं बात करना चाहूंगा कि युवकों की पीढ़ी, उनकी भूखी पीढ़ी, उत्तप्त पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी, वह एक सवाल है। उस संबंध में भी सवाल पूछे गए हैं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

पूंजीवाद की अनिवार्यता

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप बता सकते हैं कि हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति के लिए कौन जवाबदार है?

सदा से हम यही पूछते रहे हैं कि कौन जवाबदार है। इससे ऐसी भ्रांति पैदा होती है कि कोई और हमारे सिवाय जवाबदार होगा। इस देश की परिस्थिति के लिए हम जवाबदार हैं। यह बहुत ही क्लीव और नपुंसक विचार है कि सदा हम किसी और को जवाबदार ठहराते हैं। जब तक हम दूसरों को जवाबदार ठहराते रहेंगे तब तक इस देश की परिस्थिति बदलेगी नहीं क्योंकि दूसरे को जवाबदार ठहरा कर हम मुक्त हो जाते हैं और बात वहीं की वहीं ठहर जाती है।

हम ही जवाबदार हैं। यदि हम गुलाम थे तो हम कहते हैं, किसी ने हमें गुलाम बना लिया, वह जवाबदार है। और हम यह कभी नहीं सोचते कि हम गुलाम बन गए इसलिए हम जवाबदार हैं। इस दुनिया में कोई भी किसी को गुलाम नहीं बना सकता। अगर गुलाम स्वयं गुलाम बनने को तैयार नहीं है तो असंभव है। मैं मर सकता हूं, अगर मुझे गुलाम नहीं बनना है। तो मैं कम से कम मर तो सकता ही हूं। लेकिन मैं जिंदगी को पसंद करता हूं, चाहे वह गुलामी की जिंदगी हो, तब फिर मुझे गुलाम बनाया जा सकता है। इस जगत में कोई भी आदमी उसके सहयोग के बिना गुलाम नहीं बनाया जा सकता। थोड़े से अंग्रेज इस मुल्क को दो सौ साल तक गुलाम बनाए रहे और फिर भी हम कहते हैं कि जवाबदार वही थे, क्योंकि उन्होंने हमको गुलाम बनाया। और हम चालीस करोड़ लोग जवाबदार नहीं थे, जो गुलाम बने रहे?

इस भाषा में सोचना भी गुलाम मस्तिष्क का लक्षण है। वह गुलाम भी खुद नहीं बनता, गुलाम भी उसे कोई और ही बनाता है। फिर स्वतंत्र भी वह खुद नहीं हो सकता। हम हुए भी नहीं हैं स्वतंत्र, कोई और ही हमें स्वतंत्र भी कर गया। पूछना चाहिए हमारी स्वतंत्रता के लिए कौन जिम्मेवार है, हम? हमें शक है क्योंकि हम गुलामी के लिए ही जिम्मेवार नहीं हैं, फिर स्वतंत्रता के लिए कैसे जिम्मेवार हो सकते हैं? जब गुलामी दूसरे ने थोपी थी तब आजादी भी दूसरे ने थोप दी है, ऐसा मालूम पड़ता है। हम आजादी के नीचे भी मुक्त नहीं हुए हैं, दबे-दबे हो गए हैं।

ऐसा लगता है कि आजादी का भी पत्थर छाती पर पड गया है। वह भी एक मुसीबत मालूम होती है। असल में सैकड़ों वर्षों से हमने जिम्मेवारी दूसरों पर डालना सीख लिया है। या तो भगवान पर छोड़ देंगे, भगवान बहुत ही दयनीय है। उस पर कोई भी जवाबदारी डाली जा सकती है। वह बेचारा बहुत ही परेशान होगा, जितनी जवाबदारियां हमने उस पर डालीं, अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि होगी तो अब तक उसने आत्महत्या कर ली होगी। सारी जवाबदारियां भगवान पर थोंप देने में हम बड़े कुशल हैं। बीमारी हो, अकाल हो, महामारी हो, गरीबी हो, दीनता हो, दासता हो, हम भगवान पर थोंपते हैं। भाग्य पर थोप देंगे, कर्मों के फलों पर थोप देंगे लेकिन एक को हम हमेशा बचा जाएंगे--अपने को। हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। जीते हम हैं और जिम्मेवारी सब दूसरों की है।

नहीं, इस भाषा में प्रश्न ही उठाना उचित नहीं है कि हमारी परिस्थिति के लिए कौन जिम्मेवार है? यह प्रश्न ही गलत इंगित देता है कि कोई जिम्मेवार होगा। हमारी परिस्थिति में तो हम ही जिम्मेवार होंगे। कौन जिम्मेवार होगा? अगर देश में गरीबी है तो मैं जिम्मेवार हूं आप जिम्मेवार हैं। और अगर देश में बीमारी है तो मैं जिम्मेवार हूं, आप जिम्मेवार हैं। जिम्मेवारी दूसरों पर टाल देना बड़ा आसान है, सुलभ है, कनवीनिएंट है, सुविधापूर्ण है। झंझट मिट जाती है, जिम्मेवारी किसी और की हो जाती है। और हमें जैसे जीना हो, हम जीते चले जाते हैं।

रास्ते पर एक आदमी भीख मांग रहा है, हम पूछते हैं इसको भीख मंगवाने के लिए कौन जिम्मेवार है? फिर किसी एक आदमी का नाम ले लेते हैं, कोई बि.रला, कोई और करोड़पति, वह जिम्मेवार है। फिर हम अपने रास्ते पर चले गए। हम जिम्मेवार नहीं हैं। बिड़ला के बिड़ला होने में भी हम जिम्मेवार हैं; सड़क पर भीख मांगने वाले आदमी के भिखमंगेपन में भी हम जिम्मेवार हैं। और जब तक हम सीधी जिम्मेवारी अपने ऊपर न लेंगे तब तक भारत के पास अपना व्यक्तित्व नहीं हो सकता। हम अपना व्यक्तित्व उपलब्ध तभी कर सकेंगे... ध्यान रहे, व्यक्तित्व आता है रिस्पांसिबिलिटी से। दायित्व की स्वीकृति से व्यक्तित्व पैदा होता है। जो व्यक्ति जितना दायित्व स्वीकार कर लेता है उतने बड़े व्यक्तित्व का उसके भीतर जन्म होता है। जो सारी जिम्मेवारियां दूसरों पर छोड़ देता है उसकी आत्मा मरती चली जाती है।

स्वतंत्रता सबसे बड़ा दायित्व है और इसीलिए स्वतंत्रता बहुत घबड़ाने वाली बात है। इसीलिए बीस साल से हम बड़े बैचेन हैं। अंग्रेज थे तो हमें एक सुविधा थी। कुछ भी मुसीबत हो तो हम अंग्रेजों पर टाल देते थे। गोली चले जलियावाले बाग में तो वह अंग्रेज चला रहा है। और बीस साल से गोली चल रही है, वह कौन चला रहा है? अंग्रेजों ने इतनी गोली कभी भी नहीं चलाई थी जितनी हमने बीस सालों में चलाई है। अंग्रेज को इस मुल्क को गुलाम रखने के लिए इतनी गोली न चलानी पड़ी जितनी हमें इस मुल्क को स्वतंत्र रखने के लिए चलानी पड़ रही है--आश्चर्यजनक है। लेकिन अब हम किसको जिम्मेवार ठहराएं, इसलिए बड़ी बेचैनी होती है।

अब किसको जिम्मेवार ठहराएं? अंग्रेज थे तो मुल्क गरीब था, क्योंकि अंग्रेज सोना लूट कर ले जा रहे थे, जहाज भर-भर कर सोना यूरोप ले जा रहे थे, तो हम गरीब थे। अब बीस साल से हमको कौन गरीब बनाए हुए है? अब बड़ी मुश्किल है, बड़ी बेचैनी है। अब हम किस पर जिम्मेवारी डालें? बड़ी सुविधा थी गुलामी में कि सदा जिम्मेवारी किसी और की होती है। अगर हम कमजोर थे, अगर वैज्ञानिक न थे, अगर स्वस्थ न थे तो कोई जिम्मेवार था सदा। जिम्मेवारी के लिए खूंटी थी जिस पर हम टांग देते थे और निश्चिंत सो जाते थे।

आजाद हो जाने से बड़ी मुसीबत हो गई है। सब जिम्मेवारी हमारी है। सच तो यह है, सदा ही सब जिम्मेवारी हमारी थी। एक बार इस मुल्क को यह ठीक से समझ लेना होगा कि जो भी चारों तरफ हो रहा है, हम सब उसमें साथी, सहभागी हैं। अगर मुल्क कुरूप है तो इसकी कुरूपता में मैं भागीदार हूं। अगर मुल्क में दंगा होता है तो उस दंगे में मैं भागीदार हूं। अगर अहमदाबाद में कोई किसी की छाती में छुरा भोंकता है तो... मेरी सफेद चादर पर भी उसका खून का दाग है क्योंकि मैं भी इस मुल्क में हूं। और मैं जैसा मुल्क बना रहा हूं, इस मुल्क में कोई किसी की छाती में छुरा भोंकना संभव बना पाता है। उसमें मैं भागीदार हूं, उसमें मैं बच नहीं सकता। और अगर मैं बचने की कोशिश करूंगा तो फिर ठीक है, बहुत आसान है। कुछ लोग पकड़े जा सकते हैं कि ये गुंडे हैं, तो इनको सजा दे दों। बात खत्म हो जाती है, लेकिन मुल्क फिर वही रहेगा, हम फिर वही रहेंगे, फिर किसी दूसरे गांव में छुरा चलेगा, क्योंकि हम परिस्थितियां मौजूद करते रहेंगे जिनमें छुरे भोंके जाते हैं।

नहीं, इस देश को सामूहिक दायित्व की धारणा को सीखना पड़ेगा। हम सब जिम्मेवार हैं। अमीर ही जिम्मेवार नहीं है, गरीब को गरीब बनाने में। गरीब भी उतना ही जिम्मेवार है। मुझसे लोग पूछते हैं, स्त्रियां मुझसे आकर पूछती हैं कि हमारी गुलामी के लिए कौन जिम्मेवार है? पुरुष जिम्मेवार हैं, उनका खयाल है। और स्त्रियां जिम्मेवार नहीं हैं? आधी स्त्रियां हैं पृथ्वी पर, आधी से थोड़ी ज्यादा ही होती हैं हमेशा, क्योंकि पुरुष तो कुछ युद्धों में मर जाते हैं, कोइ कहीं और मर जाते हैं, मरने की कई तरकीबें खोज लेते हैं। स्त्रियां थोड़ी ज्यादा ही बढ़ जाती हैं। ऐसे भी लड़कियां पुरुष से बचने में ज्यादा शक्तिशाली हैं, उनका रेसिस्टेंस ज्यादा है। इसलिए प्रकृति भी एक सौ सोलह लड़के पैदा करती है और सौ लड़कियां पैदा करती है। लेकिन शादी की उम्र होते-होते तक सोलह लड़के मर जाते हैं--सौ रह जाते हैं और लड़कियां सौ की सौ रह जाती हैं। लड़के की ताकत कम है जिंदगी से लड़ने की, हालांकि खयाल है पुरुष को कि हम बड़े ताकतवर हैं, लेकिन रेसिस्टेंस कम है। अगर बीमारी आए तो पुरुष जल्दी फंस जाएगा बीमारी के चक्कर में, स्त्री देर से फंसेगी। असल में स्त्री को प्रकृति ने मां बनने के लिए खड़ा किया है तो उसको बहुत झेलने की क्षमता होनी चाहिए।

स्त्रियां आधे से ज्यादा हैं, और गुलामी के लिए पुरुष जिम्मेवार हैं और वे खुद जिम्मेवार नहीं हैं? तो अगर स्वतंत्रता पुरुष उनको देगा तो वे स्वतंत्र हो जाएंगी। ध्यान रहे, दी हुई स्वतंत्रता दो कौड़ी की है, क्योंकि दी गई स्वतंत्रता कभी भी वापस ली जा सकती है। आज भी दुनिया में स्त्रियों को मुक्त करने के जो आंदोलन चलते हैं वे पुरुष चलाते हैं। उसकी बात भी पुरुषों को करनी पड़ती है। अजीब लड़ाई है, पुरुषों को पुरुषों से ही लड़ना पड़ता है। स्त्रियां देखती हैं कि पुरुष स्वतंत्र कर दें उन्हें। लेकिन दी गई स्वतंत्रता कितनी कीमत रखती है? ली गई स्वतंत्रता का ही कोई मूल्य होता है। जो हम लेते हैं संघर्ष से, उससे शक्ति आती है। लेकिन वह तो हम तभी लेंगे जब जिम्मेवार हम अपने को समझें। अगर दुनिया की स्त्रियां समझ लें कि हम जिम्मेवार हैं गुलामी के लिए, तो उन्हें कोईर् गुलाम नहीं रख सकता है। अगर हम अपने दायित्व को समझ लें तो हमारा परिवर्तन अभी शुरू हो जाता है। तो वह जो मित्र मुझसे पूछते हैं, उनसे कहना चाहता हूं कि हम जिम्मेवार हैं, हम जवाबदार हैं, हम रिस्पांसिबिल हैं--हम इकट्ठे; किसी एक तरफ इशारा नहीं किया जा सकता।

जिंदगी सामूहिक है। जिंदगी सहजीवन है। हम साथ इकट्ठे खड़े हैं। दुख में, पीड़ा में, गुलामी में, सुख में, आनंद में, हम सब सहभागी हैं। इसलिए जिम्मेवारी कहीं और खोजने अगर हम गए तो वह जिम्मेवारी से बचने का रास्ता है। बचने से बदलाहट नहीं होगी। हमे स्वीकार करना ही होगा--हम ही जिम्मेवार हैं। और यह स्वीकृति क्रांति शुरू कर देती है, क्योंकि जब मुझे लगता है कि मैं जिम्मेवार हूं तो फिर मेरे हाथ उस सहयोग से पीछे हटने लगते हैं, जो देश में बुराई लाता है। जब मुझे लगता है कि मैं जिम्मेवार हूं, तब मैं पीछे हटने लगता हूं--कम से कम अपने सहयोग को तो अलग कर लूं। कम से कम मैं तो इस भांति जीऊं कि मैं इस देश को बदलने के लिए कुछ छोटा सा रास्ता बना सकूं। और अगर एक-एक आदमी जिम्मेवारी समझे तो यह देश बदल सकता है। यह अब तक नहीं बदला क्योंकि जिम्मेवारी सदा दूसरे की थी।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि इंदिरा गांधी आदि नेता समाजवाद लाने में सफल नहीं हो सकेंगे, ऐसा आप क्यों कहते हैं?

कहने का कारण है। अगर किसी बच्चे को बूढ़ा बनाना हो तो भी जवानी से गुजारना जरूरी होगा। जिंदगी स्टेजस में चलती है, जिंदगी में छलांगें नहीं हैं। बचपन से कोई आदमी छलांग लगा कर बूढ़ा नहीं हो सकता है,

जवानी से गुजरना पड़ेगा। समाजवाद आसमान से नहीं उतरता है, समाजवाद पूंजीवाद का अंतिम फल है। पूंजीवाद परिपक्व हो तो ही समाजवाद आ सकता है। और पूंजीवाद पका हुआ न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता। और अगर लाने की कोशिश की गई तो समाजवाद तो आएगा ही नहीं, पूंजीवाद तक लाना मुश्किल हो जाएगा। और देश की स्थिति सामंतवादी रह जाएगी, पूंजीवाद से भी पिछड़ी अवस्था रह जाएगी। आदमी पूंजीवाद से भी पीछे की अवस्था में है। हम पूंजीवाद की अवस्था में भी नहीं हैं। इसलिए मैं कहता हूं, अभी समाजवाद की बातें प्रीमेच्योर हैं, अप्रौढ़ हैं। समाजवाद का लक्ष्य ठीक है। समाजवाद लाना है, यह भी ठीक है, लाना ही पड़ेगा, लाना ही चाहिए। लेकिन देश पूंजीवाद की प्रक्रिया से न गुजरे तो समाजवाद ऊपर से थोपा गया होगा, जैसे प्लास्टिक के फूल लगा दिए जाएं। असली फूल के लिए जड़ें चाहिए, बीज चाहिए, पौधा चाहिए। अगर कोई हमसे कहे कि प्लास्टिक के फूल में क्या हर्ज है? तो मैं नहीं कहता कि कोई हर्ज है, लेकिन प्लास्टिक का फूल ठीक से समझा जाए तो फूल है ही नहीं।

हम समाजवाद को ऊपर से थोप सकते हैं जबकि मुल्क की आत्मा अभी पूंजीवादी भी नहीं हो पाई है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीवाद की भी बात करते हैं, समाजवाद की भी। आप बड़ी विरोधी बातें करते हैं!

वह मित्र को अंदाज नहीं है, पूंजीवाद और समाजवाद में विरोध नहीं है। पूंजीवाद की ही विकसित अवस्था समाजवाद है। जवानी में, बुढ़ापे में विरोध दिखाई पड़ सकता है। बूढ़ा कह सकता है कि बड़ा दुख है कि अब मैं जवान न रहा। लेकिन उसकी जवानी ही उसको बुढ़ापे तक लाई है। बुढ़ापे और जवानी में विरोध नहीं है। बुढ़ापा जवानी की ही विकसित अवस्था है। कच्चे फल में और पके फल में विरोध नहीं है। पका फल कच्चे फल की अवस्था है। हलांकि दोनों मे बुनियादी फर्क है। कच्चा फल कभी गिर नहीं सकता। पका फल वृक्ष से गिर जाएगा। लेकिन कच्चा फल ही पके फल के लिए रास्ता बनता है। यह खयाल में मत लें कि पूंजीवाद और समाजवाद में विरोध है। पूंजीवाद और समाजवाद दुश्मन नहीं है। पूंजीवाद की ही प्रक्रिया का परिणाम समाजवाद है। असल में पूंजीवाद ही समाज को उस स्थिति में लाता है, जहां समाजवाद संभव हो सके। और इसलिए समाजवाद जब आएगा तो हमें पूंजीवाद को धन्यवाद ही देना पड़ेगा। उसके बिना कभी समाजवाद नहीं आ सकता है।

लेकिन हम जिंदगी को सदा दो हिस्सों में तोड़ कर देखने के आदी हैं। हम विरोध में ही सोचते हैं। हम सब चीजों को विरोध में तोड़ लेते हैं कि यह-यह विरोध है। लेकिन विरोध कहां है? अगर पूंजीवाद पूंजी पैदा करेगा तो ही पूंजी का वितरण हो सकता है। पूंजीवाद के पहले समाजवाद दुनिया में क्यों न आ सका? मार्क्स के पहले बुद्धिमान लोग पैदा न हुए थे? कोई बुद्ध में कम बुद्धिमानी थी--कि महावीर में, कि कनफ्यूशियस में, कि क्राइस्ट में? लेकिन किसी को समाजवाद का खयाल न आया। तो उसका कारण था कि पूंजीवाद ही न आया हो तो समाजवाद का खयाल पैदा ही नहीं हो सकता।

मार्क्स कोई कृष्ण, बुद्ध या महावीर से ज्यादा बुद्धिमान आदमी न था। लेकिन मार्क्स एक नई स्थिति में था, जहां पूंजीवाद आना शुरू हो गया था। इसलिए मार्क्स सोच सकता था समाजवाद की बात। और मार्क्स के खयाल में भी समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी न था। वह पूंजीवाद की ही चरम सीमा थी जहां से पूंजीवाद के भीतर की शक्तियां बिखर कर समाजवाद को ले आएंगी। मार्क्स ने कभी सोचा भी न था कि रूस में समाजवाद पहले आ जाएगा! रूस पूंजीवादी देश न था। मार्क्स की भविष्यवाणी रूस के लिए न थी। मार्क्स की कल्पना में

भी नहीं हो सकता था कि चीन में समाजवाद पहले आ जाएगा। चीन बहुत पिछड़ा हुआ मुल्क है। सामंतवादी मुल्क है। चीन भी अभी पूंजीवाद नहीं था। और इसलिए चीन को जबरदस्ती समजवादी बनाने की जो चेष्टा चल रही है, जैसे बच्चे को जबरदस्ती बूढ़े बनाने की चेष्टा में जितनी तकलीफ उठानी पड़े उतना खून गिराना पड़ रहा है, उतनी परेशानी हो रही है। रूस में भी वह हुआ।

अगर मार्क्स जिंदा हो जाए तो बहुत हैरान होगा कि रूस में समाजवाद आया कैसे? क्योंकि रूस तो पूंजीवादी ही न था। रूस तो पूरा फ्यूडल था, वहां कभी पूंजी की कोई उत्पत्ति न हुई थी, कोइ औद्योगीकरण न हुआ था। लेकिन रूस के क्रांतिकारियों ने जबरदस्ती समाजवाद थोपने की कोशिश की। चालीस साल जबरदस्ती समाजवाद थोपने के परिणाम में रूस को इतनी पीड़ा झेलनी पड़ी, जितनी पूंजीवाद--इतनी पीड़ा--कभी भी किसी को नहीं दे सकता है; न कभी दी है। इतनी कंडेंस्ड वायलेंस, इतनी सघन पीड़ा से रूस को गुजरना पड़ा। अगर हम उतनी ही पीड़ा से गुजरने को तैयार हों तो इंदिरा जी समाजवाद ला सकती हैं। लेकिन उतनी पीड़ा से गुजरने को भारत तैयार नहीं है, और न तैयार किया जाना चाहिए, और न इंदिरा जी की समझ में है कि उतनी पीड़ा से गुजारना पड़ेगा--तब समाजवाद आ सकता है।

असल में अगर हमें पानी को भाप बनाना है तो सौ डिग्री तक गर्म होने देना पड़ेगा। सौ डिग्री तक पानी गर्म हो जाए तो भाप बन सकता है। भाप पानी की उलटी अवस्था नहीं है, सौ डिग्री के बाद की अवस्था है। भाप विरोध नहीं है, सौ डिग्री के बाद की अवस्था है। पूंजीवाद जब सौ डिग्री पर उबलता है तो समाजवाद आना शुरू होता है। एक तो नैसर्गिक प्रक्रिया है कि पानी धीरे-धीरे गर्म होकर सौ डिग्री पर पहुंचे, और एक व्यवस्था यह है कि सारे घर में आग लगा कर एकदम पानी को गर्म कर लिया जाए। सारे घर में आग लगा कर भी पानी गर्म हो सकता है। लेकिन उसमें पानी ही भाप नहीं बनेगा, घर के मेहमान भी, सब मित्र भी, सब रहने वाले भी भाप बन जायेंगे।

मैं चाहता हूं कि यह देश समाजवादी हो। कोई भी सहानुभूति, थोड़े भी प्रेम से, थोड़ी भी करुणा से, थोड़ी भी समझ से भरा हुआ आदमी हो तो समाजवाद के विरोध में नहीं हो सकता। सब बुद्धिमान आदमियों को साम्यवादी, समाजवादी होना ही पड़ेगा। वह अनिवार्यता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहूं कि आज समाजवाद थोपने की चेष्टा की जाए। हालांकि पूरा मुल्क का मन कहेगा कि ठीक है। बहुत सुखद है। यह गरीब को आश्वासन लगता है।

आजादी से भी गरीब को आश्वासन लगा था। हिंदुस्तान के गरीब ने बड़े सपने बांधे थे कि आजादी आने पर स्वर्ग आ जाएगा। लेकिन गरीब बहुत डिसइल्यूजंड हुआ। जब आजादी आई तो पता चला कि स्वर्ग वगैरह कुछ भी न आया। दो-चार दिन प्रतीक्षा की पंद्रह अगस्त के बाद कि अब आता होगा, थोड़ी देर लग सकती है। हिंदुस्तान में सभी चीजें समय के थोड़ी देर से आती हैं, लेट हो जाए गाड़ी शायद स्वर्ग की। दो-चार दिन प्रतीक्षा की, लेकिन झोपड़े वाले ने पाया कि झोपड़ा झोपड़ा है। उसका भूखा बच्चा भूखा है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। कितने सपने आजादी के साथ जोड़े थे, खयाल है आपको? नई पीढ़ी को कुछ खयाल में नहीं आता, पुरानी पीढ़ी ने कितने सपने देखे थे। आजादी आते से सब आ जाएगा। आजादी के आते से कुछ भी नहीं आ जाता। आजादी आते से सिर्फ गुलामी मिटी है। और आजादी आने से सवाल आए, हल नहीं आ गया। हल आ भी नहीं सकता।

अभी सारा मुल्क इस नये नशे से पीड़ित होगा कि समाजवाद आ जाए तो सब आ जाएगा। वह समाजवाद की बातें बहुत मोहक लगेंगी, जैसे आजादी की बातें बहुत मोहक लगी थीं। अगर हम अपने मुर्दा शरीरों को जिंदा कर सकें, भगतसिंह को, राजगुरु को, चंद्रशेखर को अगर वापस कब्रों से उठा कर खड़ा कर सकें

और कहें कि तुम इस मुल्क के लिए फांसी पर लटके थे, यह आजादी आ गई--तो भगतसिंह भगवान से प्रार्थना करेगा कि बड़ी गलती हो गई। इस मुल्क के लिए हम मरे थे? इस आजादी के लिए? इसी आजादी के लिए हमने कुर्बानी की थी? भगतसिंह ने कौन से सपने देखे होंगे कारागृह में, जिनके लिए मरना आसान हो गया? बड़े सपने देखे होंगे। वह यही मुल्क है, जिसके लिए सौ वर्षों से लोग मरे थे? नहीं, वह सपने का मुल्क कभी नहीं आया।

अब यह समाजवाद का सपना--नया सपना पैदा हो रहा है। असल में बीस साल में देश के नेताओं को ऐसा अनुभव हुआ कि आजादी के आ जाने के बाद देश के पास कोई सपना नहीं रह गया। तो समाजवाद का सपना ही एक सपना हो सकता है अब। समाजवाद के सपने में मुल्क पीड़ित होगा। लेकिन मैं मानता हूं कि मुल्क की स्थितियां ऐसी नहीं हैं कि समाजवाद आज फलित हो सके। देश को संपत्ति पैदा करनी पड़े, पूंजी पैदा करनी पड़े। अगर देश संपत्ति और पूंजी पैदा न करे तो बांटने का सवाल नहीं उठता। बंटेगा क्या? सिर्फ गरीबी बंट जाएगी, हम और गरीब मालूम पड़ेंगे, और कुछ भी नहीं हो सकता है।

इसलिए मैं कहता हूं, इंदिरा जी, या इंडीकेट, या कोई भी इस मुल्क को अभी समाजवादी नहीं बना सकते, लेकिन समाजवाद के नाम पर एक इलेक्शन और जीत सकते हैं। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता है। एक इलेक्शन बहत्तर का वह जीत जाएंगे, और उनके सामने बहत्तर से आगे कोई इरादे भी नहीं हैं। बहत्तर का इलेक्शन ही जीत जाएं तो बहुत है। बहुत जोर से बात करेंगे। अभी तो समाजवाद की बात बहुत जोर से चलेगी। इतने जोर से कि सारा मुल्क एकदम समाजवाद से ही चिंतन करता हुआ मालूम पड़ेगा कि समाजवाद, समाजवाद, समाजवाद! लेकिन समाजवाद की छलांग यह मुल्क नहीं लगा सकता।

यह मुल्क अभी फ्यूडल सिस्टम के बाहर आ रहा है। अभी फ्यूडल सिस्टम के, सामंतवादी व्यवस्था के भी बाहर नहीं हो पाया है। पूंजीवादी नहीं हो पाया है। क्योंकि पूंजीवाद की प्रक्रिया का बड़ा हिस्सा है इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन, एक औद्योगिक क्रांति हो जानी चाहिए। तो मुल्क में औद्योगिक क्रांति अभी भी नहीं हो पाई है। अभी भी हमारा अस्सी प्रतिशत व्यक्ति खेत पर निर्भर है। अस्सी प्रतिशत आदमी खेत पर ही जिंदा है। बाकी बीस प्रतिशत आदमी भी, वह जो अस्सी प्रतिशत आदमी खेत पर जिंदा हैं, उसके शोषण पर जिंदा हैं। अभी देश औद्योगिक नहीं हो गया। अभी गांव हैं, अभी गांव नगर नहीं बन गए। अभी देश का गरीब आदमी मध्यमवर्गीय भी नहीं हो गया है कि वह सोच सके सम्पत्ति के संबंध में, धन के संबंध में। और धन पैदा कैसे हो? क्योंकि हमारे सारे उपकरण आज भी प्रीमिटिव हैं, आज भी आदिम हैं। आज भी हम आदिम बातों पर बैठे हुए हैं। और आदिम बातों से संपत्ति पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। एक आदमी खेत में बैल को लगा कर जुता हुआ है। बैल को ईजाद हुए कोई पांच हजार साल हो गए। पांच हजार साल पहले जिस आदमी ने बैल जोता था खेत में, वह बड़ा क्रांतिकारी आदमी रहा होगा। लेकिन पांच हजार साल बाद भी जो बैल जोत रहा है, उसकी बुद्धि पर शक होता है।

हम अभी औद्योगिक क्रांति से नहीं गुजरे। उद्योग बढ़े, संपत्ति इतनी आए कि देश में बांटी जा सके तो समाजवाद चरितार्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए मैं कहता हूं, कोई अभी समाजवाद नहीं ला सकता है। इसमें कोई इंदिरा जी या उनके साथियों की कमजोरी नहीं है। इसमें देश की वैज्ञानिक स्थिति जैसी है, उसकी मौजूदगी कारण है। इसलिए मैं चाहूं, या कोई भी चाहे तो समाजवाद नहीं ला सकता। और अगर लाना हो तो फिर एक ही रास्ता है--फिर स्टैलिन जैसा नेता चाहिए, या माओ जैसा नेता चाहिए जो समाजवाद लाने के

लिए इतना खून कर सके, इतनी हत्या कर सके। उतनी हत्या की हमारी तैयारी नहीं दिखाई पड़ती है कि हम इतनी हत्या के लिए राजी हो जाएं।

फिर लोकतंत्र नहीं चाहिए क्योंकि लोकतंत्र समाजवाद नहीं ला सकेगा, इस हालत में। लोकतंत्र समाजवाद ला सकता है अमरीका जैसी हालत में, इस हालत में नहीं ला सकता है। इस हालत में तो बंदूक का कुंदा हो, और छाती के पीछे तोप लगी हो और पूरे वक्त मरने का डर हो, जबरदस्ती काम लिया जा सके और जबरदस्ती धन पैदा करवाया जा सके, तो शायद पचास वर्ष की हत्या और हिंसा के बाद हम थोड़ी बहुत संपत्ति पैदा कर सकें। लेकिन आज भी रूस अमीर नहीं हो सका है। पचास साल के अनुभव के बाद भी रूस एक गरीब देश है। हमें लगेगा कि अगर रूस गरीब देश है तो चांद पर पहुंचने की कोशिश कैसे करता है? वह कोशिश ऐसे ही है जैसे एक गरीब आदमी सिल्क का कुर्ता पहन कर और सामने के पड़ोसी धनी आदमी के सामने अकड़ कर निकले--चाहे घर में भूखा रह जाए। रूस की कोशिश वैसी है, इसलिए रूस पिछड़ भी गया है उस दौड़ में। क्योंकि वह दौड़ इतनी महंगी थी कि अमरीका के लिए शौक था, रूस के लिए जान की बन गई, इसलिए पिछड़ना भी पड़ा उस दौड़ में। और फिर नीचे जनता का दबाव भी बढ़ा कि घर में खाने को न हो... ।

पिछले कुछ वर्षों से रूस को भी गेहूं कनाडा से खरीदना पड़ रहा है। चालीस साल के समाजवाद के बाद भी गेहूं बाहर से खरीदना पड़े तो थोड़ा सोचने की बात है। थोड़ा विचारने की बात है। मैं आपसे कहता हूं कि आने वाले पांच वर्षों के बाद अमरीका ही रूस को गेहूं दे सकेगा। अमरीका के ही गेहूं पर रूस को भी पलना पड़ेगा जैसा हमको पलना पड़ रहा है। और यह बात साफ होती चली जा रही है क्योंकि पचास वर्ष की जबरदस्ती के कारण प्रेरणा तो बिल्कुल मर गई है। कोई काम नहीं करना चाहता है रूस में। और जबरदस्ती कब तक काम लिया जा सकता है? पूरा रूस एक कनसनट्रेशन कैंप हो गया है, एक कारागृह हो गया है, जिसमें जबसदस्ती काम लिया जा रहा है। जिसमें आदमी को मरने के डर से काम लिया जाता है। कब तक ऐसा चल सकता है? थोड़ी देर चल सकता है। बहुत देर के बाद मुश्किल हो जाता है, आदमी इनकार कर देता है। या इतना मृत्यु से भी राजी हो जाता है कि कहता है कि ठीक है, मर ही जाएं--जो कुछ होगा, होगा। लेकिन रूस अमीर नहीं है। आज भी रूस के पास कितनी कारें हैं? कितने लोगों के पास ठीक कपड़े हैं? कितने लोगों के पास ठीक भोजन है? जो यात्री जाते हैं वे गलत खबरें लेकर आ जाते हैं, क्योंकि उनके ठहरने के लिए खास होटलें हैं, खास दुकानें हैं खरीदने के लिए, खास आदमी हैं बात करने के लिए, जिससे वे बात करके लौटते हैं। लेकिन इधर-उधर भटक कर थोड़ा रूस में खोजना बड़ा सवाल है, और तरह का सवाल है।

रूस अमीर नहीं हो सका, और यह अनुभव में आ रहा है उन्हें, कि कहीं कोई भूल हो गई है। फिर भी स्टैलिन बहुत हिम्मत का आदमी था। उतने हिम्मत का आदमी हिंदुस्तान में कृष्ण के बाद तो पैदा नहीं हुआ। अगर कृष्ण हमको फिर से मिल जाएं तो कृष्ण हिम्मत के आदमी हैं। वे कहते हैं, कोई फिकर नहीं--मारो, क्योंकि आत्मा मरती ही नहीं है इसलिए कोई चिंता नहीं है। कृष्ण हमको मिल जाएं तो समाजवाद लाया जा सकता है। और रूस से ज्यादा हत्या करनी पड़ेगी भारत में, रूस से बहुत ज्यादा हत्या करनी पड़ेगी क्योंकि भारत रूस से बहुत ज्यादा आलसी है। इतने आलस में हमें हत्या के सिवाय कोई रास्ता न रह जाएगा।

लेकिन इंदिरा जी को और उनके साथियों को कोई अंदाज नहीं है। अंदाज का कोई कारण भी नहीं है क्योंकि भीड़ जिस बात से राजी, वह बात कहनी चाहिए--नेता तभी नेता बना रह सकता है। नेता को कोई दूरदर्शी होने की जरूरत नहीं है। दूरदर्शी आदमी नेता नहीं हो सकता। नेता को शॉर्ट साइटेड होना चाहिए, पास ही दिखाई पड़ना चाहिए, दूर दिखाई पड़ना ही नहीं चाहिए, तभी नेता हो सकता है। और अगर नेता अंधा हो

तो और भी अच्छा नेता हो सकता है। क्योंकि बिल्कुल दिखाई न पड़े तो वह ऐसे नारे लगा सकता है जो कि देखने वाला कभी भी नहीं लगा सकता। और अंधों के देश में नेता होने के लिए अंधा होना क्वालीफिकेशन है--योग्यता है।

तो, मैं कहता हूं कि नहीं इंदिरा जी और न कोई और समाजवाद ला सकता है। समाजवाद आएगा, लेकिन पचास साल मुल्क को औद्योगीकरण से गुजारना जरूरी है। पचास साल मुल्क को पूंजीवाद की ठीक-ठीक तीव्रतम अवस्था पानी जरूरी है। पचास साल बाद समाजवाद की बातें अर्थपूर्ण हो सकती हैं। लाना तो पड़ेगा ही। पूंजी की व्यवस्था संक्रमण की व्यवस्था है, अंतिम फल तो समाजवाद होना ही चाहिए। लेकिन पूंजीवाद भी लाना पड़ेगा।

अब ये बातें मेरी उलटी दिखाई पड़ सकती हैं। ये बातें उलटी दिखाई पड़ सकती हैं कि मैं कहता हूं कि समाजवाद लाना है और पूंजीवाद लाना पड़ेगा। आपको दिखाई पड़ती होंगी उलटी, उलटी नहीं हैं। क्योंकि मैं उनको विकास के चरण मानता हूं। लेकिन हम कैसे ला पाएंगे पूंजीवाद? गांधी जी ने इस देश को जो विचार दिया है वह सामंतवादी है। वह पूंजीवाद तो नहीं लाता, वह पूंजीवाद से नीचे गिराता है। क्योंकि सब व्यस्थाएं उपकरणों पर निर्भर होती हैं। चरखा सामंतवादी व्यवस्था का उपकरण है। चरखे के द्वारा इतना ही पैदा हो सकता है कि किसी तरह अधपेट भरा आदमी सो सके। इससे ज्यादा पैदा नहीं हो सकता। चरखे के द्वारा पूंजी अतिरिक्त पैदा नहीं हो सकती है। हाथ के द्वारा खेत में काम करने से कोई बहुत पूंजी पैदा नहीं हो सकती। हाथ से कपड़ा बुनने से पूंजी पैदा नहीं हो सकती। ये सामंतवादी उपकरण हैं, इनके द्वारा रामराज्य लाया जा सकता है, समाजवाद नहीं लाया जा सकता है।

रामराज्य का मतलब है, बहुत पीछे लौट जाना--तीन हजार साल पीछे लौट जाना। गांधी जी इतने डरे हुए थे पूंजीवाद से कि वे सामंतवाद की बात करने लगे, पीछे लौट चलें। पीछे लौट जाओ। बड़े उद्योग का उन्हें बड़ा खतरा लगा, तो छोटे उद्योग रखो जिससे संपत्ति ही पैदा न होगी तो खतरा न होगा। पीछे लौट चलो। इतना कम सामंतवादी व्यवस्था में आदमी एक अर्थ में बड़ा अच्छा आदमी था। अच्छा इसलिए था कि उसके पास बुरे होने की ताकत भी न थी। आखिर बुरे होने के लिए भी ताकत चाहिए। और मेरा मानना है कि जो आदमी बुरा नहीं हो सकता, उसकी अच्छाई का कोई मतलब नहीं है। एक बीमार आदमी अगर सड़क पर जाकर उपद्रव न करता हो, और एक बीमार बच्चा अगर बाप की चुपचाप आज्ञा मान लेता हो, तो शुभ नहीं है। उस बच्चे की आज्ञा का कोई अर्थ है, जो चाहे आज्ञा तोड़ना तो तोड़ सके। उस आदमी के अच्छे होने का प्रयोजन है, जो चाहे बुरा होना तो हो सके। सामंतवाद ने इतनी दीन-हीन व्यवस्था दी आदमी को कि बुरे होने तक का उपाय न था। तो आदमी अच्छा था!

गांधी जी को लगता है कि उन्हीं अच्छे दिनों में वापस लौट चलें। वे दिन अच्छे न थे, सिर्फ रुग्ण, कमजोर दिन थे। अच्छे दिन आगे आ सकते हैं। अच्छे दिनों की संभावना आगे है, पीछे नहीं। तो अगर गांधी जी का विचार मान कर हम चलते हैं तो पूंजीवाद भी त्वरित नहीं हो पाएगा, पूंजीवाद भी धीमा गति पकड़ लेगा। और पूंजीवाद जितना धीमा होगा, समाजवाद का नक्शा उतना ही दूर मानना चाहिए। पूंजीवाद में त्वरा, स्पीड लाने की जरूरत है। औद्योगीकरण में स्पीड लाने की जरूरत है। चरखे से वह स्पीड में बाधा पड़ रही है। वह चरखा हटना चाहिए बीच से। तो पचास साल में औद्योगीकरण हो सकता है देश का। मशीन लाई जा सकती है, मशीन से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। केंद्रित संपत्ति पैदा हो सकती है। तो समाजवाद भी संभव है।

गांधी जी को अगर हम केंद्र पर रख कर चलते हैं तो देश पूंजीवादी ही नहीं हो पाएगा, समाजवादी होने की बात तो बहुत दूर है। इसीलिए गांधी जी को सारी दुनिया में वे सारे लोग, जो समाजवाद से डरे हुए हैं, आदर दे रहे हैं। उनका कुल कारण इतना है कि गांधी ही दुनिया को समाजवाद से बचा सकते हैं। बिड़ला नहीं बचा सकते हैं। बिड़ला तो समाजवाद में ले ही जाएंगे। दुनिया का कोई पूंजीपति दुनिया को समाजवाद से नहीं बचा सकता। अमरीका के पूंजीपति दुनिया को समाजवाद से नहीं बचा सकते। सब पूंजीवादी मिल कर जो कर रहे हैं, उसका अंतिम परिणाम समाजवाद ही होगा। लेकिन गांधी जी बचा सकते हैं, क्योंकि वह पूंजीवाद से पीछे की व्यवस्था में लौटने की बात करते हैं। जितना तीव्र और इंटेंस होगा उतनी जल्दी समाजवाद का सपना पूरा हो सकता है।

लेकिन हमारा चिंतन बहुत अजीब है। एक तरफ हम समाजवाद की बात भी करेंगे, दूसरी तरफ गांधी जी का जयकार भी करते रहेंगे। यह दोनों में विरोध है, क्योंकि गांधी जी का समस्त चिंतन सामंतवादी प्रक्रिया में ले जाएगा। वह पूंजीवाद के पहले की व्यवस्था है, पूंजीवाद के बाद की व्यवस्था नहीं है। मै पूंजीवाद का विरोधी नहीं हूं इस अर्थों में कि पूंजीवाद समाजवाद में ले जाने वाला है। मैं पूंजीवाद का विरोधी हूं, इस अर्थों में कि पूंजीवाद पर ही नहीं रुक जाना है, समाजवाद तक पहुंचना है। मैं समाजवाद का पक्षपाती हूं क्योंकि समाजवाद के बिना जगत से गरीबी और दुख और दारिद्रय नहीं मिट सकता है। लेकिन मैं पूंजीवाद का समर्थन करता हूं क्योंकि पूंजीवाद के पूर्ण विकास के बिना समाजवाद नहीं आ सकता है। इनको सोचना पड़ेगा, ये विरोधी बातें नहीं हैं। ये विरोधी दिखाई पड़ सकती हैं।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, अमरीका जैसी समृद्धि देश में लानी है, तो अमरीका में तो मानसिक अशांति बढ़ी है, व्यभिचार बढ़ा है, आचरण का पतन हुआ है, चारित्र्य नीचे गया है। हमारे देश का चरित्र और आचरण तो बहुत ऊंचा है!

यह थोड़ा सोचना पड़ेगा। यह हमारे देश के चरित्र और आचरण के संबंध में बहुत विचार करने की जरूरत है। तीन बातें उन्होंने कही हैं, वह विचार करनी चाहिए। पहली बात तो यह कि आम खयाल यह है, और ठीक है कि अमरीका में मानसिक अशांति बढ़ी है। लेकिन मानसिक अशांति आपको पता है, कब बढ़ती है? मानसिक अशांति तब बढ़ती है जब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, उसके पहले नहीं बढ़ती है। जानवरों में मानसिक अशांति नहीं होती है। लेकिन इसलिए हम जानवर होना पसंद न करेंगे। आदिवासियों में मानसिक अशांति नहीं होती है, लेकिन हम आदिवासी होना पसंद न करेंगे। असल में मानसिक अशांति होती तब है जब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब मन की मांग शुरू होती है। अब जो आदमी भूखा बैठा है, खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है, मकान नहीं है, उसको मानसिक अशांति नहीं हो सकती है। उसकी शारीरिक अशांति इतनी बड़ी है--मानसिक अशांति का उपाय नहीं है।

जब शारीरिक अशांति मिटती है तो मनासिक अशांति शुरू होती है। मानसिक अशांति एक अर्थ में विकास है। और जब मन की भी सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो आत्मिक अशांति शुरू होती है। वह और बड़ा विकास है। आत्मिक अशांति तीसरी बात है। बुद्ध और महावीर आत्मिक रूप से अशांत थे, मानसिक रूप से नहीं। बुद्ध और महावीर की शरीर की जरूरतें पूरी थीं, मन की भी जरूरतें बहुत पूरी थीं। मन की हमारी

जरूरतें पूरी नहीं हैं, अमरीका की भी जरूरतें पूरी नहीं हैं। तो बुद्ध और महावीर ने एक नई अशांति अनुभव की--मानसिक नहीं, आध्यात्मिक--एक स्प्रिचुअल अनरेस्ट पैदा हो गया।

अब बुद्ध को जितनी भी उस देश में सुंदर स्त्रियां हो सकती थीं--उनके पिता ने सब उनके महल में इकट्ठी कर दी थीं। अब मानसिक अशांति का उपाय न रहा। मानसिक अशांति अब क्या करे? सब स्त्रियां जो चाही जा सकती थीं मिल गयीं। सुंदरतम मकान मिला, सुंदरतम निवास मिला, सब सुविधा मिली, शरीर की सब जरूरतें पूरी हो गईं। संगीत मिला, साहित्य मिला, चित्रकला मिली, नृत्य मिला, सब मिल गया। शरीर और मन की सब जरूरतें पूरी हो गईं। तो बुद्ध को एक नई अशांति ने पकड़ा, स्प्रिचुअल अनरेस्ट--कि हमको परमात्मा पाना है। हमको सत्य पाना है। हम बिना सत्य पाए नहीं रह सकते। तो क्या आप कहेंगे कि बुद्ध की हालत अच्छी नहीं है?

ध्यान रहे, अशांतियों के भी तल हैं। शारीरिक अशांति निकृष्टतम अशांति है। मानसिक अशांति उससे ऊंची अशांति है। आध्यात्मिक अशांति और भी ऊंची अशांति है। और ध्यान रहे, जिस तल पर हम शांत होंगे उसी तल पर शांत हो सकते हैं। जिस तल पर हम अशांत भी नहीं हुए उस तल पर हम शांत कैसे होंगे?

भारत मानसिक रूप से अशांत होने में अभी समर्थ नहीं है। अभी शारीरिक तल पर अशांति है। अभी पेट भूखा है। शरीर के तल पर अशांति है। तो हम सोचते हैं कि शायद हम मानसिक रूप से शांत हैं, आप गलती में हैं। मानसिक रूप से शांत होने के लेवल तक भी हम अभी नहीं पहुंचे हैं। इसलिए हम शांत मालूम पड़ रहे हैं। हमारी शांति वास्तविक नहीं है। हमारी शांति बिल्कुल झूठी है क्योंकि हम अशांत ही नहीं हुए जिस तल पर, उस पर हम शांत कैसे हो जायेंगे?

अमरीका शरीर के तल पर शांत हुआ है तो मन के तल पर अशांत हुआ है। यह मनुष्य के एवोल्यूशन का दूसरा कदम है। बेचैन हैं, तकलीफ है, लेकिन ध्यान रहे, जब वे मानसिक रूप से अशांत हुए हैं तो वे मानसिक शांति की तलाश में लग गए हैं। बहुत जल्द वे सारे उपाय खोज लेंगे जिनसे मन में शांति हो जाए। एक नई अशांति अमरीका में शुरू होगी, जो आध्यात्मिक होगी। वे ईश्वर, सत्य और निर्वाण और मोक्ष की खोज से बेचैन हो जाएंगे। तब क्या हम कहेंगे, वे लोग आध्यात्मिक रूप से अशांत हो गए हैं तो हम उनसे बेहतर हैं? नहीं, मैं आपसे कहता हूं, वे हमसे बेहतर हैं, क्योंकि हमसे ऊंचे तल पर अशांत हैं। तो ऊंचे तल पर शांत भी हो सकते हैं। इसको नियम मानता हूं मैं कि जिस तल पर हम अशांत होंगे, उसी तल पर शांत हो सकते हैं। लेकिन, तल के नीचे हैं हम। हम शरीर के तल पर अशांत हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे पहले आते हैं कि हमें ध्यान सीखना है, बहुत अशांति है। फिर कुछ दिन मेरे पास रुकते हैं, मैं उनसे और बात करता हूं तो पता चलता है, किसी को लड़की की शादी करनी है असल में, इसलिए अशांति है। वह कहता है कि ठीक है, जब निकट आता है तो पहले तो वह ध्यान और परमात्मा की बात करता है। जब निकट आता है तब वह धीरे से बात करता है कि लड़की बड़ी हो गई है और शादी करनी है। किसी के लड़के को नौकरी नहीं मिल रही है, वह बेकार है। किसी को बीमारी है जो ठीक नहीं हो रही है। किसी के घर में इतनी अव्यवस्था है कि कोई उपाय नहीं रह गया। उससे वह कह रहे हैं कि हम मानसिक रूप से अशांत हैं। खोजने आते हैं ध्यान, लेकिन बहुत जल्दी पता चलता है कि उनको अगर धन मिल जाए तो वह ध्यान से ज्यादा कीमती सिद्ध होगा। धर्म की बात करते आते है, भगवान के मंदिर की तरफ आते हैं, लेकिन भगवान से भी हाथ जोड़ कर पता है क्या मांगते हैं वे? अगर हम आदमी, जो मंदिर में हाथ जोड़े खड़े हैं उनको ऊपर से देख कर लौट आए तो हम समझेंगे कि बड़े धार्मिक आदमी हैं। हो सकता है वे भीतर कह रहे हों कि मेरा जिससे प्रेम है उसी से विवाह करवा दिया जाए। नौकरी नहीं मिल रही है, नौकरी दिलवा दी जाए। रिटायरमेंट हुआ

जा रहा है और दो चार साल नौकरी चल जाए तो अच्छा है। शादी नहीं हो रही है बच्चे की--तो बच्चे की शादी हो जाए। बीमारी है, बीमारी दूर हो जाए।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहाः मुझे भगवान पर पक्का विश्वास आ गया है। क्योंकि मैंने प्रार्थना की थी कि मुझे नौकरी मिल जाए और मुझे नौकरी मिल गई। तो मैंने कहाः सस्ता विश्वास है। आगे अब इसका दुबारा फिर से परीक्षा मत करना भगवान से, नहीं तो गड़बड़ हो जाए। उसने कहाः क्या मतलब है आपका? मैंने कहाः जब भूल-चूक से किसी तरह मिल गई है नौकरी तो ठीक है, तुम विश्वास ही रखना। अब आगे परीक्षा मत करना। नहीं तो भगवान हर परीक्षा में सही न निकलेगा। अब यह जो आदमी है, इसकी शारिरिक तकलीफ है। हमारी इस देश में तकलीफ, शारीरिक है, मानसिक नहीं। लेकिन हमारे देश के साधु-संत समझाते हैं लोगों को कि देखो अमरीका में कितनी मानसिक अशांति है। उनको पता नहीं है कि अमरीका में मानसिक अशांति हमसे विकसित होने के कारण है, वह अविकसित अवस्था नहीं है। वह हमसे विकसित अवस्था है।

असल में जीवन में ऊंची अशांतियां पैदा होनी शुरू होती हैं। एक जंगली आदमी है, उसको अगर संगीत सुनने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। उसे अगर कालिदास और शेक्सपीयर पढ़ने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। वह मजे से अपने जंगल में जो कर रहा है, करता रहेगा। उसे कभी खयाल में न आएगा कि शेक्सपीयर को भी पढ़ने का भी एक आनंद है और एक मोझर्ट को सुनने का भी एक आनंद है, और पिकासो के चित्रों को भी देखने का एक आनंद है। लेकिन जिस आदमी ने पिकासो के चित्रों में आनंद लिया है उस आदमी को पिकासो के चित्र देखने को न मिलें तो अशांति शुरू हो जाएगी। और जिसने वीणा के रस में डुबकी ली है उसे अगर वीणा सुनने को न मिले तो अशांति शुरू हो जाएगी। अशांतियों के तल हैं। जितना आदमी विकसित होता है, ऊंची अशांतियां पकड़ती हैं।

सौभाग्यशाली हैं वे, जिनको नीचे की अशांतियां शांत हो गई हैं और ऊंची अशांतियों ने जिन्हें पकड़ लिया है। क्यों? क्योंकि ऊपर की अशांतियां उन्हें ऊपर की शांतियों की खोज में ले जाएंगी। अमरीका खोज पर निकल पड़ा है। आज अमरीका में सारा गहरे से गहरा चिंतन इस बात का है कि हम शांत कैसे हो सकें? ध्यान रहे, उनका अगर मन शांत होगा तो हम और उनमें जमीन आसमान का फर्क होगा। आज वे इस चिंता में पड़े हैं कि क्या एल एस डी से मन शांत हो सकेगा? कोई केमिकल तरकीब खोजी जा सकती है? कोई ध्यान का रास्ता हो सकता है, कोई मेडिटेशन हो सकता है? कोई उपाय हो सकता है जिससे मन शांत हो सके? पच्चीस तीस वर्षों में मन के शांत होने के उपाय उनमें विकसित हो जाएंगे। वे मन के विज्ञान को भी खोज लेंगे और हम यहां बैठ कर प्रशंसा का अनुभव करते रहेंगे--आत्मप्रशंसा--कि हम बड़े शांत हैं, वे बड़े अशांत हैं।

उन्हीं मित्र ने पूछा है कि वहां आत्महत्या बढ़ गई है!

ध्यान रहे, आत्महत्या मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ बढ़ती है। जितना मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से अविकसित आदमी होगा उतनी आत्महत्या नहीं करता। आदिवासी आत्महत्या नहीं करते हैं। जितनी जंगली कौम होगी, जितनी गहरे जंगल में रहती होगी, जितनी प्राचीन होगी, आत्महत्या नहीं करेगी। क्योंकि आत्महत्या करने के लिए बड़ा आत्मवान व्यक्तित्व चाहिए। पहली तो बात यह है कि इतना बोध चाहिए कि जीवन व्यर्थ है तो मैं अपने को समाप्त कर लूं। यह बोध साधारण बोध नहीं है। आदिवासी दूसरे की हत्या कर सकता है। अगर जीवन गड़बड़ है तो दूसरे की हत्या कर दों। लेकिन अगर जीवन मुझे व्यर्थ मालूम पड़े तो मैं अपना अपने को समाप्त कर दूं, इसके लिए बड़े आत्मबल की जरूरत है।

जैसे-जैसे बुद्धि विकसित होती है, आत्महत्या बढ़ेगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आत्महत्या कोई गौरव की चीज है। और बुद्धि विकसित होगी तो और आत्महत्या के बाद आत्म-साधना शुरू होगी। सिर्फ वे ही सभ्यताएं, जो आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंचती हैं, आत्म-साधना की स्थिति में संलग्न होती हैं। आत्महत्या यह कहती है कि कुछ बदलना पड़ेगा, मिटाना पड़ेगा। सबसे पहला खयाल यही आता है कि अपने शरीर को मिटा दो। अगर जिंदगी ठीक नहीं है, आनंद नहीं देती है, रस नहीं देती है तो शरीर को मिटा दो। लेकिन, धीरे-धीरे यह भी खयाल आएगा कि शरीर को मिटाने में भी क्या होगा? तो शायद यह भी खयाल आएगा कि अपनी आत्मा को बदल डालो, मिटा डालो अहंकार को। आत्मा को बदल डालो तो शायद जिंदगी बदल जाए। असल में जो व्यक्ति आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंचता है वहां से दो रास्ते निकलते हैं--एक आत्महत्या का, एक आत्म-साधना का। पहले आत्महत्या की जाएगी, धीरे-धीरे आत्म-साधना में रुचि बढ़ेगी। क्योंकि आत्महत्या बहुत लम्बी देर तक खींची नहीं जा सकती। अमरीका में आत्महत्याएं बढ़ी हैं। और मैं आपसे कहता हूं, आने वाले पचास वर्षों में आत्म-साधनाएं बढ़ेंगी, क्योंकि आत्महत्या स्थायी चीज नहीं हो सकती, वह संक्रमण की बात है।

उन मित्र ने पूछा है कि वहां व्यभिचार बढ़ा है, आचरणहीनता आई है!

यह सवाल बहुत ज्यादा जटिल है। पहली तो बात यह है कि अमरीका जैसे मुल्क में पहली दफा आंकड़े उपलब्ध हुए हैं। हमारे मुल्क में आंकड़े नहीं हैं। आंकड़े न होने से हमें बड़ी सुविधा है। अगर मैं आपसे, एक-एक आदमी से आकर पूछूं कि आपने अपनी जिंदगी में अपनी पत्नी को छोड़ कर और किन-किन स्त्रियों से प्रेम किया है तो कोई भी राजी नहीं होगा। हां, बता देगा कि पड़ोसी यह कह रहे हैं, लेकिन अपन दूर हैं। लेकिन अमरीका में अगर पूछने जाते हैं तो लोग बता देंगे कि मैंने अपनी पत्नी को छोड़ कर तीन स्त्रियों से मेरे संबंध थे। वे नाम गिना देंगे, हिसाब लिखा देंगे। तो अमरीका के पास आंकड़े हैं इस बात के आज कि कौन आदमी एक जिंदगी में कितनी स्त्रियों से संबंध जोड़ता है। कौन आदमी विवाह के पहले संबंध जोड़ता है? कौन आदमी विवाह के भीतर भी संबंध जोड़ता है। इन सबके आंकड़े हैं। उन आंकड़ों की वजह से यहां के साधु-संत प्रसन्न होते हैं। वह आंकड़े उठा लेते हैं और कहते हैं, देखो, अमरीका में यह हो रहा है। चालीस परसेंट लड़कियां कहती हैं कि हमने विवाह के पहले संभोग का अनुभव किया है--हद हो गई व्यभिचार की। लेकिन आंकड़ों की कमी तथ्यों की कमी नहीं है। असल में आंकड़े भी सभ्यता के विकास के साथ ही उपलब्ध होते हैं। अमरीका का व्यक्ति आज इतना समर्थ है कि बेफिकर है, निश्चिंत है, वह सच बात कह सकता है। हम सच बात कहने में भी समर्थ नहीं हैं।

व्यभिचार उतना ही है, लेकिन पर्दे के पीछे है, वह पर्दे के बाहर नहीं है। वह पीछे-पीछे सरकता है। पीछे सरकता है, आंकड़े नहीं मिलते। तो आंकड़े न मिलने की वजह से हम बड़े निश्चिंत होते हैं। आंकड़े बहुत नई घटना है, स्टेटिस्टिक्स की साइंस बहुत नई चीज है। अगर हम पता लगाने जाएं कि आज से हजार साल पहले हिंदुस्तान में कितनी वेश्याएं थीं तो कोई पता नहीं लग सकता था। इसका मतलब यह नहीं है कि वेश्याएं नहीं थीं। अगर हम आज भी पता लगाने जाएं कि हिंदुस्तान में कितने लोगों ने जिंदगी में मास्टरबेशन, हस्तमैथुन किया है तो आंकड़े नहीं मिल सकते। लेकिन अमरीका में मिल सकते हैं। उसका कारण यह है कि जिंदगी को सीधा-साफ... पाखंड की तरह नहीं किया जा रहा है। एक आदमी से पूछें तो वह कह देगा कि हां, ऐसा-ऐसा हुआ। उसकी वजह से मनुष्य को समझने में बड़ी सुविधा हुई। सच्चाइयां सामने आईं, ठहराने के तथ्य प्रकट हुए। और नये तथ्यों ने जीवन को संवारने, सुधारने की नई सुविधा जुटाई है। उसका परिणाम यह हुआ है कि हम

आदमी के वास्तविक व्यक्तित्व को जानने में जितने समर्थ आज हो गए हैं उतने कभी भी नहीं थे। क्योंकि आदमी ऊपर एक शक्ल बनाए था, भीतर कुछ और था। वह कहता कुछ और था, करता कुछ और था।

आज अमरीका में हम पता लगा सकते है कि वह करता क्या है। और अगर करने का पता लगे, तो बहुत हैरानी की बात है। अनुभव किया गया--अभी दस... जो वर्षों में खोज-बीन होती है अमरीका में, उसके बहुत अजीब परिणाम हैं। उसके परिणाम यह हैं कि करीब-करीब सत्तर प्रतिशत लोग जीवन में कभी न कभी हस्तमैथुन करते हैं। तो अब यह हमको आंकड़ा मिल गया। यह आंकड़ा अमरीका के आदमी पर ही लागू नहीं है, यह सारी दुनिया के आदमी पर लागू है। और जैसे-जैसे आदमी विकसित होगा, सारी दुनिया में ये आंकड़े कमोबेश दो-चार-दस परसेंट के फर्क से मिलने शुरू हो जाएंगे।

लेकिन अभी हमारे पास आंकड़े नहीं हैं। आंकड़े तो दूर हैं, हस्तमैथुन की पब्लिक रूप से चर्चा करनी मुश्किल है। आंकड़ा तो बहुत मुश्किल है और अगर हम किसी से पूछने जाएंगे तो वह डंडा उठा लेगा कि आप पागल हो गए हैं, मैं ऐसा काम करूंगा? यह आप किसी और से पूछिए। ऐसा कहीं कोई नहीं करता। हम जिंदगी को उसकी सच्चाई, उसकी नेकेडनेस में--नग्नता में स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। अगर हम किसी पत्नी से पूछें कि तुझे कभी कोई और पुरुष सुंदर मालूम पड़ता है तो वह कहेगी, आप कैसी बातें करते हैं? और अगले जन्म में भी इसी पति को पाने की प्रार्थना कर रही हूं। कभी कोई पुरुष मुझे सुंदर मालूम पड़ता ही नहीं। मेरे पति से ज्यादा सुंदर कोई है ही नहीं। अब यह असंभव है बात। यह बिल्कुल असंभव है। और पुरुष भी सुंदर हैं। और सड़क पर वे दिखाई पड़ते हैं तो सुंदर मालूम ही पड़ेंगे, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें न कुछ पाप है, न कोई आचरणहीनता है। पति ने कोई सुंदर होने का ठेका नहीं ले लिया है, और न पत्नी ने सुंदर होने का ठेका ले लिया है। लेकिन दूसरे की पत्नी से अगर मैं कहूं कि आप बहुत सुंदर हैं तो झगड़ा हो सकता है। हालांकि झगड़ा होना नहीं चाहिए। मैं सिर्फ एप्रीसिएशन कर रहा हूं। मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए। आपके बगीचे में आऊं और कहूं कि आपका गुलाब का फूल बहुत सुंदर है तो झगड़ा नहीं करते आप। और आपसे कहूं कि आपकी लड़की बहुत सुंदर है तो झगड़ा शुरू हो जाएगा। अगर गुलाब के फूल से आप प्रसन्न हुए थे, तो लड़की के सौंदर्य की चर्चा सुन कर आपको और भी प्रसन्न होना चाहिए था। सौंदर्य सहज तथ्य है जीवन का। लेकिन हमने उसे स्वीकार नहीं किया है।

हमारी अस्वीकृति हमारा आचरण बनी हुई है और हम सोचते हैं कि हम बहुत आचरणवान हैं। मैं इधर साधु-संन्यासियों से निरंतर मिलता हूं। मैं बहुत हैरान हुआ। एक आंकड़ा मेरी नजर में आना शुरू हुआ तो मैं मुश्किल में पड़ गया। जब साधु-संन्यासी मुझे मिलते हैं--और मुल्क में हजारों लोगों से मेरा संबंध है--तब वे मुझसे सबके सामने आत्मा-परमात्मा की ही बातें करते हैं। कहते हैं, कुछ एकांत में बातें करनी हैं, साधना के संबंध में। फिर वे एकांत में मिलते हैं तो सिवाय सेक्स के उनका कोई प्राब्लम नहीं होता। वे कहते हैं कि हम बड़ी मुश्किल में पड़े हैं।

अभी छह सात दिन पहले एक साधु मुझे मिलने आए थे और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। ब्रह्मचर्य के लिए जो भी नियम कहे गए हैं, सबका पालन करता हूं, लेकिन ब्रह्मचर्य सधता नहीं। स्त्री को देखता नहीं हूं, आंखें झुका कर चलता हूं, लेकिन सपने में स्त्रियां आ जाती हैं। अब दिन भर तो किसी तरह सम्हाल लेता हूं, लेकिन सपने में मैं क्या करूं? मेरे वश के बाहर है। इधर यह नहीं खाता हूं, यह नहीं खाता हूं, यह नहीं खाता हूं, कम खाता हूं, सब है, लेकिन स्वप्नदोष बंद नहीं होते। अब एक साधु यह कहेगा, लेकिन वह सबके सामने वह स्वीकार करने को राजी नहीं है। मैंने कहाः तुम इसे सबके सामने कहो ताकि लोगों को पता

चल सके कि साधु भी क्या मुसीबत है ताकि और लोग साधु न बन जाएं। लेकिन वह यह कहने को राजी नहीं होगा। सबसे सामने वह ब्रह्म की बातें करेगा और सबके सामने समझाएगा कि ब्रह्मचर्य महान आनंद है। और किस कष्ट में और किस नरक में वह पड़ा है, वह यह भीतर अनुभव करेगा।

उन संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप ठीक कहते हैं, लेकिन अगर मैं यह सबके सामने कहूं तो उससे कुछ भी सिद्ध न होगा। सिर्फ इतना ही सिद्ध होगा कि ब्रह्मचर्य तो ठीक है, मैं गड़बड़ हूं और कुछ सिद्ध न होगा। मैं इस झंझट में क्यों पड़ूं? जब कोई दूसरा नहीं पड़ रहा है तो मैं क्यों पड़ूं? अभी लोग मेरे पैर छूते हैं, नमस्कार करते हैं, आदर करते हैं। सब मेरा आदर खो जाएगा। सब सम्मान खो जाएगा।

सम्मान और आदर के डर से सत्य खो रहा है, खोता रहा है। इस देश को अपने व्यक्तित्व के संबंध में सत्य खोजना पड़ेगा। तो मैं आपसे कहना चाहता हूंः दुनिया में न कोई आचरणहीन है, न कोई आचरणवान है। मनुष्य करीब-करीब एक जैसा है। सारी पृथ्वी पर एक जैसा है। थोड़े बहुत फर्क हैं, हवाओं की वजह से, गर्मी और ठंड की वजह से। वह फर्क आदमी के फर्क नहीं हैं, क्लाइमेटिक फर्क हैं, लेकिन आदमी सारी दुनिया में एक जैसा है। आदमी-आदमी में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। और इस भ्रम में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है कि कोई हम कुछ ज्यादा चरित्रवान हैं और कोई दूसरा कम चरित्रवान है।

फिर हमारी चरित्र की अपनी व्याख्याएं हैं। अगर हिंदुस्तान में किसी के संबंध में कह दिया जाए कि वह आदमी चरित्रहीन है तो आप समझते हैं, क्या समझेंगे आप? आप फौरन समझेंगे कि कुछ सेक्स के मामले की गड़बड़ है। अगर किसी के बाबत कह दिया जाए कि फलां आदमी चरित्रहीन है तो हमें यही खयाल आएगा कि उसके यौन संबंधों की कोई गड़बड़ है। हमें कभी खयाल नहीं आएगा कि वह आदमी झूठ बोलता होगा। हममें कभी खयाल न आएगा कि वह आदमी वचन के लिए प्रतिबद्ध नहीं रहता। हमें कभी खयाल न आएगा कि वह आदमी आचरण की और कोई भूलें करता होगा। हमें फौरन सेक्स का खयाल आएगा। चरित्रहीन का मतलब ही हमारे मन में यह है कि कुछ न कुछ उसके सेक्सुअल संबंधों में कोई गड़बड़ है।

लेकिन दूसरी कौमें चरित्रहीन का दूसरा मतलब लेती हैं। और इसलिए उन्होंने कई अर्थों में आचरण को सुधारा है। कई अर्थों में आचरण को सुधारा है। आज अगर इंग्लैंड या अमरीका में चौरस्ते पर अखबार रख दिया जाए तो लोग पैसा डाल जाते हैं पेटी में, अपना अखबार ले जाते हैं। अगर हमारे यहां रखा जाए तो अखबार भी ले जाएंगे, पेटी भी ले जाएंगे। कोई पता ही नहीं चलेगा, दूसरे आदमी का सवाल ही नहीं उठेगा। दूसरे आदमी को कोई कठिनाई ही न आएगी, पहला आदमी ही निपटा देगा। डिपार्टमेंटल स्टोर्स हैं, लोग चीजें चुन लेते हैं, पैसा डाल देते हैं। यह एक तरह क आचरण है जो अर्थ रखता है। अगर कोई किसी को वचन देता है तो पूरा करने की कोशिश करता है। यहां इतना ही कह देना काफी है कि भूल गए। बात खत्म हो गई। इसमें कुछ आचरणहीनता नहीं है? एक आदमी मुझसे कह जांऐ कि वह पांच बजे आएगा, वह नौ बजे रात आ रहा है। शाम पांच बजे का आया हुआ, वह कहता है कि जरा काम में लग गया। मेरे चार घंटे उसकी प्रतीक्षा में खराब हुए, इसका कोई हिसाब ही नहीं है, इससे कोई संबंध नहीं है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है।

हमारी आचरण की सारी केंद्रितता सेक्स से बंध गई है। सारी दुनिया में सेक्स से धीरे-धीरे आचरण को मुक्त किया जा रहा है और आचरण के दूसरे आयाम पकड़े जा रहे हैं। क्योंकि ठीक से समझा जाए तो सेक्स दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है। दूसरे आयाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। दूसरे आयाम, सत्य बोलने के, वचन प्रतिबद्धता के, नियम समय के पालन के ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, आश्वासन के ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

अगर मैं किसी के पास जाऊं और उससे कहूं कि मेरा फलां काम कर देना तो वह कहेगा कि हां, कर देंगे। कोई नहीं तो कहेगा ही नहीं, और कोई काम करेगा भी नहीं। बल्कि मैंने लोगों से कहाः कभी मैं किसी के घर बैठा हूं... एक वाइस चांसलर के घर ठहरा था। कोई आया, उसने कहा कि मेरा फलां लड़का है, वह आपके यहां नौकरी के लिए दरख्वास्त दिया है। उन्होंने कहाः हां मैं सब देख लूंगा, घबड़ाइए मत। वे चले गए तो मैंने कहाः सच में आप देखेंगे? उन्होंने कहाः देखने का कहां सवाल है? जो आता है उससे यही कहना पड़ता है। क्योंकि अगर हम देखने लगें तो मुश्किल में पड़ जाएं और अगर न करें तो वह आदमी पीछे पड़ जाए। तो हम हां बोल देते हैं और झंझट के बाहर हो जाते हैं।

सब राजनीतिज्ञ हां बोल रहे हैं। सब नेता हां बोल रहे हैं। कुछ भी कहिए, वे कहते हैं हां, हम करेंगे। और उनके हां का मतलब ठीक से समझ लेना। जैसा पहले कहा जाता था कि स्त्री नहीं कहे तो उसका मतलब हां होता है। ऐसा नेता हां कहे तो उसका मतलब नहीं होता है। हमारे आचरण के और आयाम हैं, उनका हमें खयाल नहीं है। हमने सेक्स पर उसे केंद्रित किया है। सच बात तो यह है कि जो कौम सेक्स पर आचरण को केंद्रित करती है, वह एक अर्थ में आचरणहीन है। सेक्स कोई अर्थ नहीं रखता--इतना बड़ा, जितना हम सोच रहे हैं। जितना हम उसे महत्व दे रहे हैं उतना अर्थ नहीं रखता। जिंदगी के और तथ्यों में एक तथ्य वह भी है। और उसके संबंध में ऑब्सेस्ड होने की जरूरत नहीं है कि हम उसी को सोचते रहें और दिन-रात उसी की फिकर रखें, दूसरों की खिड़कियों में से झांक कर देखते रहें कि कहां क्या हो रहा है? कहीं आचरणहीनता तो नहीं हो रही है? सब एक दूसरे की तलाश में लगे हुए हैं कि कहीं कोई आचरणहीनता तो नहीं हो रही है? यह पूरी बात आचरणहीनता की है।

मेरे एक मित्र डाक्टर हैं दिल्ली में, सरदार हैं। वे गए हुए थे लंदन एक मेडिकल कांफेरन्स में भाग लेने। मैं उनसे बात कर रहा था। लौट कर वे कहने लगे कि आपकी बात ठीक लगती है, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक बड़े पार्क में कोई पांच सौ डाक्टर की कांफ्रेंस थी तो हम कुछ मिलने-जुलने, कुछ खाने-पीने के लिए इकट्ठे हुए थे। पांच सौ लोग हैं पार्क में, डाक्टर आपस में बातें कर रहे हैं। मेरे सरदार मित्र भी वहां हैं, वे बड़े बेचैन हैं। बाकी सारे लोग बातों में लगे हैं, वे बातों में नहीं हैं। वह किसी दूसरी खोज में लग गए हैं। एक लड़का और एक लड़की एक बेंच पर पार्क में एक दूसरे के गले में हाथ डाले, आंख बंद किए बैठे हैं। वे बड़े बेचैन हुए जा रहे हैं कि बड़ी आचरणहीनता हो रही है। अब आपको इस आचरणहीनता से क्या लेना-देना है? आप अपना आचरण सम्हाल रहे हैं, इतनी ही काफी कृपा है। एक युवक और एक युवती गले में हाथ डाले बैठे हैं, इससे आपका क्या बिगड़ रहा है? और उनका गले में हाथ डाले बैठना और उनका आंख बंद करके बैठना एक पवित्र क्षण भी हो सकता है, प्रेयरफुल भी हो सकता है, प्रेमपूर्ण भी हो सकता है।

और सच तो यह है कि जब दो व्यक्ति प्रेम में एक-दूसरे के निकट होते हैं तब इतनी पवित्रता जन्मती है, जितनी पवित्रता और कभी नहीं जन्मती है। मगर उनको कहां फुरसत है, वे तो परेशान हुए जा रहे हैं। उन्होंने बगल के डाक्टर से कहा कि यह क्या आचरणहीनता हो रही है, पब्लिक पार्क में? उस डाक्टर ने कहाः आपको क्या मतलब है? और मैं हैरान हूं कि आप बार-बार वहीं क्यों देख रहे हैं? और आप ज्यादा वहां मत देखिए, नहीं तो पुलिसवाला आकर आपको उठा कर ले जा सकता है। क्या अशिष्ट व्यवहार कर रहे हैं आप? वह उन दो व्यक्तियों की बात है। वह उनकी जिंदगी की बात है। यह उनका लेन-देना है, उससे आपको क्या प्रयोजन है? वह आपको कहां बाधा डाल रहे हैं। वे बेचारे आंख बंद किए चुपचाप न मालूम किस काव्य में खो गए हैं! आप क्यों

उपद्रव बीच में बन रहे हैं? आपसे क्या लेना-देना है? उन्होंने कहाः नहीं, यह मेरे बरदाश्त के बाहर है, पब्लिक पार्क में ऐसी आचरणहीनता हो रही है!

अब हमारी बुद्धि है। हम इसको आचरणहीनता कहें? किसको आचरणहीनता कहेंगे? डाक्टर आचरणहीन है, या एक युवक और युवती का एक दूसरे के पास बैठना आचरणहीनता है। अगर एक युवक और युवती का प्रेम करना आचरणहीन है तो यह पृथ्वी ज्यादा दिन नहीं चल सकती। फिर तो यह डूबेगी। फिर इसका बचने का उपाय नहीं है और यह पृथ्वी डूबेगी तो डाक्टर भी नहीं बच सकता, यह भी जाएगा। नहीं, मेरी दृष्टि में यह डाक्टर आचरणहीन है। दूसरे व्यक्तियों के जीवन में इतनी ज्यादा घुसपैठ, आचरणहीनता है। दूसरे व्यक्तियों का अपना जीवन है। उस जीवन में हम इतनी आतुरता से प्रवेश करें, यह हमारे भीतर किसी गहरी कमी का द्योतक है।

मेरी अपनी समझ है--मैंने उस डाक्टर को कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि तुम किसी स्त्री को कभी प्रेम नहीं कर पाए। काश, तुमने किसी स्त्री को प्रेम किया होता! काश, तुम किसी स्त्री के पास बैठ कर किसी स्वप्न में खो गए होते तो तुम्हें आचरणहीनता मालूम न होती। लेकिन तुमने कभी किसी स्त्री को प्रेम नहीं किया। इसलिए तुम्हें आचरणहीनता दिखाई पड़ी है। और तुमने कभी किसी स्त्री को नहीं चाहा इसलिए तुम दूसरे बहाने खोज कर उस लड़की को देखते रहे। वह तुम्हारा देखना, वह तुम्हारा झांकना, वह चोरी से तुम्हारा उसकी तरफ बार-बार रुख करना एकदम चरित्रहीनता का लक्षण है।

हम चरित्र की क्या परिभाषा करते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है। आप हैरान होंगे, हमारे शास्त्रों में जिनमें बड़े-बड़े साधु संन्यासियों ने, बड़े महात्माओं ने किताबें लिखी हैं, उसमें स्त्रियों की भारी निंदा की है और निंदा के साथ-साथ स्त्रियों के एक-एक अंग की रसपूर्ण चर्चा भी की है। असल में साधु-संन्यासी स्त्रियों की निंदा के बहाने उनके अंगों की चर्चा का रस भी ले लेते हैं। वह चर्चा भी साथ चलेगी, वह निंदा भी साथ चलेगी--वह चर्चा भी साथ चलेगी।

कौन है चरित्रवान? चरित्र के हमें सारे आधार बदलने पड़ेंगे। अब तक जिसको हम चरित्र कहते रहे हैं, वह चरित्र कम है, वह दूसरे को दुश्चरित्र सिद्ध करने की चेष्टा ज्यादा है। अब तक जिसको हम आचरण कहते रहे हैं वह आचरण कम है, वह दूसरे को निंदित करने की, नरक भेजने का उपाय और व्यवस्था ज्यादा है। सांझ मैं इस संबंध में मैं थोड़ी बात करना चाहूंगा कि चरित्र क्या है क्योंकि वह भी हमारा जिंदा सवाल है।

मेरी बातों को इतनी शांति प्रेम और से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

भारत के भटके युवक

मेरे प्रिय आत्मन्!

हमारी चर्चाओं का अंतिम दिन है, और बहुत से प्रश्न बाकी रह गए हैं। तो मैं बहुत थोड़े-थोड़े में जो जरूरी प्रश्न मालूम होते हैं, उनकी चर्चा करना चाहूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि कहा जाता है कि भारत का जवान राह खो बैठा है। उसे सच्ची राह पर कैसे लाया जा सकता है?

पहली तो यह बात ही झूठ है कि भारत का जवान राह खो बैठा है। भारत का जवान राह नहीं खो बैठा है, भारत की बूढ़ी पीढ़ी की राह अचानक आकर व्यर्थ हो गई है, और आगे कोई राह नहीं है। एक रास्ते पर हम जाते हैं और फिर रास्ता खत्म हो जाता है, और खड्डा आ जाता है। आज तक हमने जिसे रास्ता समझा था वह अचानक समाप्त हो गया है, और आगे कोई रास्ता नहीं है। और रास्ता न हो तो खोने के सिवाय मार्ग क्या रह जाएगा? भारत का जवान नहीं खो गया है, भारत ने अब तक जो रास्ता निर्मित किया था, इस सदी में आकर हमें पता चला है कि वह रास्ता है नहीं। इसलिए हम बेराह खड़े हो गए हैं। रास्ता तो तब खोया जाता है जब रास्ता हो और कोई रास्ते से भटक जाए। जब रास्ता ही न बचा हो तो किसी को भटकने के लिए जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। जवान को रास्ते पर नहीं लाना है, रास्ता बनाना है। रास्ता नहीं है आज। और रास्ता बन जाए तो जवान सदा रास्ते पर आने को तैयार है, हमेशा तैयार है। क्योंकि जीना है उसे, रास्ते से भटक कर जी थोड़े सकेगा! बूढ़े रास्ते से भटके, तो भटक सकते हैं। क्योंकि अब उन्हें जीना नहीं है। और सब रास्ते--भटके हुए रास्ते भी कब्र तक पहुंचा देते हैं।

लेकिन जिसे जीना है, वह भटक नहीं सकता। भटकना मजबूरी है उसकी। जीना है तो रास्ते पर होना पड़ेगा, क्योंकि भटके हुए रास्ते जिंदगी की मंजिल तक नहीं ले जा सकते हैं। जिंदगी की मंजिल तक पहुंचने के लिए ठीक रास्ता चाहिए, लेकिन रास्ता नहीं है। मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि युवक नहीं भटक गया है, हमने जो रास्ता बनाया था वह रास्ता ही विलीन हो गया; वह रास्ता ही नहीं है अब। आगे कोई रास्ता ही नहीं है। और अगर हम युवक वर्ग को ही गाली दिए जले जायेंगे कि तुम भटक गए हो, तो वह हमपर सिर्फ क्रुद्ध हो सकता है क्योंकि उसे कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है और आप कहते हैं भटक गए हो। हमने कुछ रास्ता बनाया था, जो बीसवीं सदी में आकर व्यर्थ हो गया है। हमने एक रास्ता बनाया था। वह रास्ता ऐसा था कि उसका व्यर्थ हो जाना अनिवार्य था।

पहली तो बात यह है : हमने पृथ्वी पर चलने लायक रास्ता कभी नहीं बनाया। हमने रास्ता बनाया था, जैसे बेबीलोन में टॉवर बनाया था कुछ लोगों ने स्वर्ग जाने के लिए। वह जमीन पर नहीं जाता था, वह ऊपर आकाश की तरफ जा रहा था। स्वर्ग पहुंचने के लिए कुछ लोगों ने एक टॉवर बनाया था। हिंदुस्तान ने पांच हजार सालों में जमीन पर चलने लायक रास्ता नहीं बनाया, स्वर्ग पर पहुंचने के रास्ते खोजे हैं। स्वर्ग पर पहुंचने के रास्ते खोजने में हम पृथ्वी पर रास्ते बनाने भूल गए हैं। हमारी आंखें आकाश की तरफ अटक गई हैं। और हमारे पैर तो मजबूरी से पृथ्वी पर ही चलेंगे। बीसवीं सदी में आकर हमको अचानक पता चला है कि हमारी

आंखों और पैरों में विरोध हो गया है। आंखें आकाश से वापस जमीन की तरफ लौटी हैं तो हम देखते हैं, नीचे कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि नीचे हमने कभी देखा ही न था।

इस देश मे हमने एक पारलौकिक संस्कृति बनाने की कोशिश की थी। बड़ा अदभुत सपना था, लेकिन सफल नहीं हुआ, न सफल हो सकता था। इस पृथ्वी पर रहने वाले को इस पृथ्वी की संस्कृति बनानी पड़ेगी, पार्थिव। इस पृथ्वी की संस्कृति हम निर्मित नहीं किए।

मैंने सुना है, यूनान में एक बहुत बड़ा ज्योतिषी एक रात एक गड्ढे में गिर गया। चिल्लाया है, बड़ी मुश्किल से पास की किसी किसान औरत ने उसे निकाला है। जब निकाला है तब उस ज्योतिषी ने कहा है कि मां, तुझे बहुत धन्यवाद। मैं एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हूं, तारों के संबंध में मुझसे ज्यादा कोई भी नहीं जानता। अगर तुझे तारों के संबंध में कुछ भी जानना हो तो मैं बिना फीस के तुझे बता दूंगा, तू चली आना। मेरी फीस भी बहुत ज्यादा है। उस बूढ़ी औरत ने कहाः बेटे, तुम निश्चिंत रहो, मैं कभी न आऊंगी; क्योंकि जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखाई पड़ते हैं उसके आकाश के तारों के ज्ञान का भरोसा मैं कैसे करूं?

उस बूढ़ी औरत ने ठीक कहा। और वह ज्योतिषी गिरा इसीलिए गड्ढे में, कि वह रात को आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ चला जा रहा था। पैर भटक गए और वह गड्ढे में गिर गया।

भारत कोई तीन हजार साल से गड्ढे में पड़ा है आकाश की तरफ आंखें उठाने के कारण। नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं कि किन्हीं क्षणों में आकाश की तरफ न देखा जाए, लेकिन आकाश की तरफ देखने में समर्थ वही है जो जमीन पर रास्ता ठीक से बना ले और विश्राम कर सके। वह आकाश की तरफ देख सकता है। लेकिन हम जमीन को भूल कर अगर आकाश की तरफ देखेंगे तो गहरी खाई में गिरने के सिवाय कोई मार्ग नहीं है। लेकिन पूछा जा सकता है कि भारत के जवान ने इसके पहले यह भटकन क्यों न ली? बीसवीं सदी में आकर क्या बात हो गई? रास्ता--मैं कह रहा हूं, तीन हजार साल से हमारी पूरी संस्कृति ने जमीन पर रास्ता ही नहीं बनाया। अगर हम पुराने शास्त्र पढ़ें तो उनमें हमें मिल जाएंगी किताबें, जिनका नाम है, "मोक्षमार्ग", मोक्ष की तरफ जाने वाला रास्ता। लेकिन पृथ्वी पर चलने वाले रास्ते के संबंध में एक किताब भारतीय संस्कृति के पास नहीं है। स्वर्ग जाने का रास्ता भी है, नरक जाने का रास्ता भी है, लेकिन पृथ्वी पर चलने के रास्ते के संबंध में कोई बात नहीं है।

पूछा जा सकता है, आज ही क्यों यह सवाल उठा? इसके पहले जवान ने इनकार क्यों न किया? उसका कारण हैं। हमने एक और तरकीब की थी। हमने एक तरकीब की थी कि हम जवान को जवान होने ही न देते थे। बच्चों की शादियां कर देते थे और जब बच्चों की शादियां हो जाती थीं, वे जिम्मेवार हो जाते थे। सत्रह और अठरह साल का होते-होते लड़का बाप बन जाता था। बाप जवान नहीं हो सकता, बाप बूढ़ा होना शुरू हो जाता है। और जब कोई व्यक्ति बाप बन जाता है तो वह बूढ़ों की तरह सोचने लगता है। हिंदुस्तान में जवान भी नई घटना है, नया फिनोमिना है। हिंदुस्तान में जवान पहले कभी नहीं था। बच्चे थे और बूढ़े थे। और दोनों के बीच में हमने ऐसा तालमेल बिठाया था कि बीच की सीढ़ी को बिल्कुल ही गोल कर दिया था। उसका पता ही नहीं चलता था कि कहां है। आठ और नौ साल के बच्चे की शादी कर देंगे तो जवान कैसे पैदा होगा?

जवान भी बीसवीं सदी की घटना है। क्योंकि अब शादी होती है पच्चीस और छब्बीस वर्ष में। बचपन चला जाता है बारह, तेरह, चौदह साल में। फिर चौदह साल के बाद दस साल का वक्त बचता है जब आदमी बच्चा भी नहीं होता और बूढ़ा भी नहीं होता। यह दस साल का वक्त है जब वह युवा होता है। यह पीढ़ी पहली दफे पैदा हुई है। यंगर जनरेशन नई घटना है। यह कभी थी ही नहीं दुनिया में। और इसलिए उसके साथ नये सवाल आ गए हैं। उस नई पीढ़ी ने पूछना शुरू किया है। उस नई पीढ़ी ने संदेह करना शुरू किया है। उस नई पीढ़ी ने कहा

कि हमें पृथ्वी पर रहना है। यह स्वर्ग की बातें बंद करो। हमें जमीन पर रहने का रास्ता बताओ। और जमीन पर रहने का हमारे पास कोई रास्ता नहीं है, इसलिए वह भटक गई है। और अगर आज भारत की नई पीढ़ी पश्चिम का अनुकरण कर रही है तो मजबूरी में; क्योंकि हमारे बापदादों ने उसके लिए कोई रास्ता नहीं बनाया। उसे मजबूरी में दूसरों की तरफ देखना पड़ रहा है। वह मजबूरी है। उसके लिए जवान को दोषी मत ठहराना। और अगर हमने देर की तो शायद हो सकता है कि हम सदा के लिए इमिटेटिव हो जाएं, सदा के लिए हम नकल करने लगें।

हमें जल्दी करनी चाहिए और जमीन के रास्ते अपने बना लेने चाहिए ताकि हम अपने पैर पर खड़े हो सकें। आज हमें हर चीज के लिए पश्चिम की तरफ देखना पड़ रहा है। हर चीज के लिए हमें उनकी तरफ आंख उठानी पड़ती है। और उसका कारण है। उसका कारण यह है कि हमारे पास कुछ भी नहीं है। सच यह है कि हमारे मां-बाप हमारे लिए वसीयत में सिवाय अध्यात्म के और कुछ भी नहीं छोड़ गए हैं। अकेले अध्यात्म से जिया नहीं जा सकता। हां, मरना हो तो मरा जा सकता है। अकेले अध्यात्म से जीना नहीं निकलता है। और ध्यान रहे, अध्यात्म की उत्सुकता जवान की नहीं होती है, आमतौर से बूढ़े की होती है। क्योंकि जैसे आदमी मरने के करीब पहुंचता है, वह विचार करने लगता है, मरने के बाद क्या? जवान पूछता है जिंदगी में क्या है? बूढ़ा पूछता है, मरने के बाद क्या है? उनके सवाल अलग हैं, उनके जवाब अलग होंगे। हमारे सारे शास्त्र बूढ़ों के लिए लिखे गए हैं। कोई परीक्षित मरते समय सुनता है। वह बूढ़े के शास्त्र हैं जो पूछ रहा है कि मरने के बाद क्या होगा--स्वर्ग होंगे, नरक होंगे, देवता होंगे, आत्मा बचेगी, नहीं बचेगी, मैं कहां जाऊंगा, नहीं जाऊंगा? वह मरते आदमी के शास्त्र हैं। जिंदा आदमी, जिसे जीना है उसके लिए हमने कौन सा शास्त्र निर्मित किया है? इसलिए हम विज्ञान पैदा नहीं कर पाए। विज्ञान जवान का शास्त्र है, धर्म बूढ़े का शास्त्र है।

तो हमारा जवान जरूर मुश्किल में है, बहुत कठिनाई में है। और मेरी अपनी मान्यता है कि वह करुणा योग्य है, क्रोध के योग्य नहीं। बहुत दया के योग्य है क्योंकि उसको कोई वसीयत नहीं छोड़ गया है। एक अर्थ में हमारा युवक अनाथ है। अनाथ इस अर्थों में कि उसकी जमीन की कोई वसीयत उसके पास नहीं है। उसकी पुरानी पीढ़ियां उसके लिए जीने योग्य, जिंदगी से रस निकालने योग्य, कोई भी तकनीक, कोई भी साइंस नहीं छोड़ गई हैं। हां, उसे एक तरकीब बता दी है कि अगर तुम्हें मरना हो तो मोक्ष जाने का रास्ता है। अभी वह मरना नहीं चाहता है, वह जीना चाहता है--उसके लिए व्यर्थ है। इसलिए मंदिरों में, मस्जिदों में जवान दिखाई नहीं पड़ता। हां, लड़कियों वगैरह के खयाल से कोई जवान पहुंच गया हो तो बात अगल है। लेकिन मंदिर और मस्जिद के लिए जवान नहीं जाता, वहां बूढ़े इकट्ठे हो रहे हैं।

वहां बूढ़े क्यों दिखाई पड़ रहे हैं, उसका कारण है। उसका कारण है, बूढ़े की उत्सुकता बदल गई। अब वह जिंदा रहने में उत्सुक नहीं है। अब वह ढंग से मरने में उत्सुक है। ठीक है, उसकी उत्सुकता गलत नहीं है। उसकी उत्सुकता की भी तृप्ति होनी चाहिए और उसके चिंतन को भी मार्ग मिलना चाहिए कि मृत्यु के बाद क्या है? लेकिन वह जवान का चिंतन नहीं है। तो हम कठिनाई में पड़ गए हैं। रास्ता नहीं है, रास्ता बनाना पड़ेगा।

कौन बनाएगा यह रास्ता? बड़ी जटिलता का सवाल है क्योंकि बूढ़े विरोध में हैं, वृद्ध पीढ़ी विरोध में है और जवान पीढ़ी अनुभवहीन है। रास्ता कौन बनाएगा? रास्ता बनाने के लिए दो चीजों की जरूरत है--अनुभव की और शक्ति की। शक्ति जवान के पास है, अनुभव बूढ़े के पास है। उन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं है। रास्ता बनेगा कैसे? रास्ता बनाने के लिए हिंदुस्तान की बूढ़ी पीढ़ी को जवान के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होना पड़ेगा। अपने अनुभव से उसे सचेत करना पड़ेगा, और जवान की शक्ति को नियोजित करना पड़ेगा। लेकिन बूढ़ी

पीढ़ी निंदा में संलग्न है। वह सिर्फ निंदा कर रही है, वह सिर्फ गालियां दे रही है कि सब बिगड़ गए हैं। लेकिन यह कहने से कुछ फल नहीं होता। इससे अगर कोई बिगड़ भी गया हो तो उसे कोई सुधरने का मार्ग नहीं मिलता। अगर कोई न भी बिगड़ा हो तो बार-बार कहने से कि बिगड़ गया है, उसके चित्त में बिगड़ने की दिशा पैदा होती है।

नहीं, वृद्ध पीढ़ी को, बहुत की कीमती समय यह है कि, वह अपने सारे अनुभव पर ध्यान देकर भारत के लिए नया रास्ता बनाने में युवक की शक्ति का नियोजन कर सके। लेकिन यह तभी हो सकता है जब वृद्ध--पुरानी पीढ़ी--नई पीढ़ी की तरफ निंदा से न देखे, करुणा और प्रेम से देखे। लेकिन वृद्ध नाराज है। नाराज वह इसलिए है कि उसकी पुरानी सारी दुनिया अस्तव्यस्त हो गई है। नाराजगी का कारण दूसरा है। नाराजगी का कारण युवक नहीं है। नाराजगी का कारण उसका अब तक का बनाया हुआ सारा ढांचा गिर गया है। जैसे में एक मकान बनाऊं और पूरा मकान गिर जाए और मैं अपने बेटे की पिटाई शुरू कर दूं। मेरा क्रोध तो उस मकान के गिर जाने के लिए है।

पुरानी संस्कृति का पूरा मकान गिर रहा है, गिर गया है। नाराजगी बेटे पर है और ऐसा लग रहा है कि ये बेटे मकान को गिराए दे रहे हैं। नहीं। मकान, जैसा हमने बनाया था, वह गिरने ही वाला था। हां बेटों ने अब तक उसे सहारा दिया था क्योंकि बेटों को हम बहुत जल्दी बूढ़ा बना देते थें। अब बेटे उसको बचाने में सहायता नहीं दे रहे हैं। गिरा नहीं रहें हैं, सिर्फ बचाने में सहायता नहीं दे रहे हैं। और बूढ़े हाथ कैसे किसी मकान को बचा सकते हैं? वह गिर रहा है। वे बेटों पर नाराज हैं। उस नाराजगी को छोड़ना पड़ेगा। और मेरी दृष्टि में अगर पिछली पीढ़ी नाराजगी को छोड़ दे, तो नई पीढ़ी उसके प्रति आदर से भर सकती है। जो निंदा करे उसके प्रति आदर नहीं हो सकता। नई पीढ़ी का आदर नहीं है पुरानी पीढ़ी के प्रति, क्योंकि पुरानी पीढ़ी सिवाय निंदा के और कुछ भी नहीं कर रही है।

मैं एक घर में जाता हूं। जब भी जाता हूं, वह सज्जन अपने लड़के को सामने लाकर खड़ा कर देते हैं अपराधी की तरह, कहते हैं, देखिए साहब, अभी कितनी उम्र है तुम्हारी? और मुंह सूंघिए, सिगरेट की बास आ रही है। और उस लड़के को सामने खड़ा कर देते हैं। वह आंख झुकाए हुए खड़ा है। अपराधी अनुभव कर रहा है। वह बाप का दुश्मन हुआ जा रहा है। बुढ़ापे में इस पिता को वह ठीक करेगा। छोड़ नहीं सकता है। यह इकट्ठा हो रहा है क्रोध। उन्होंने न मालूम कितनों के सामने उस लड़के को खड़ा किया होगा और भूल से मेरे सामने भी खड़ा कर दिया।

मैंने उनसे पूछाः यह लड़का सिगरेट अभी नहीं पीएगा तो कब पीएगा? उन्होंने कहाः क्या कहा, क्या कहते हैं आप? क्या कहते हैं आप! उस लड़के ने आंख उठा कर मुझे गौर से देखा। पहली दफा एक आदमी आया है कि जिसने सहानुभूति प्रकट की। वह लड़का रात मुझसे अलग से मिलने आया और उसने कहा कि आप मुझे बताएं कि मैं सिगरेट कैसे छोड दूं? मैं भी परेशान हूं। लेकिन मेरे पिता इतने क्रुद्ध हैं कि मैं सिर्फ उनका क्रोध तोड़ने के लिए, और उनके खिलाफ बगावत करने के लिए सिगरेट पीए चला जा रहा हूं। और मैं पीता रहूंगा। वे कितना इनकार करते हैं, देखते हैं। चोरी से पीऊंगा, छिप कर पीऊंगा, लेकिन मैं पीता रहूंगा। मेरे पास और कोई उपाय नहीं है इनकार करने का, तो मैं सिगरेट पीकर डिनाई कर रहा हूं, अपने पिता को इनकार कर रहा हूं। लेकिन आपको कैसे इनकार करूं? आपने कहा कि यह उम्र है पीने की, तो मैं पछने आया हूं, सच में सिगरेट पीने में कोई हर्ज नहीं है? मैं छोड़ना चाहता हूं, लेकिन मेरे पिता मुझे नहीं छोड़ने दे रहे हैं।

पिताओं को पता नहीं है कि उनकी निंदा उनके बच्चों में उनके प्रति घृणा पैदा करती है, सम्मान नहीं। फिर जब घृणा पैदा करती है और आदर नहीं मिलता तो वे कहते हैं, बेटे आदर नहीं दे रहे हैं। नई पीढ़ी अनादर से भरी है। गलत हे यह बात। मेरे अनुभव में ऐसा नहीं आया। सच तो यह है कि नई पीढ़ी बहुत आदर देना चाहती है, लेकिन आदर योग्य लोग खोजने मुश्किल हैं। नई पीढ़ी आदर देने को आतुर है, लेकिन न गुरु आदर योग्य मालूम पड़ता है, न पीता आदर योग्य मालूम पड़ते हैं। न मां आदर योग्य मालूम पड़ती है। क्यों? क्योंकि पिता, मां और गुरु इस तरह के झूठ बोल रहे हैं जिनको बच्चे बहुत जल्दी आविष्कृत कर लेते हैं।

पिता बच्चे को समझा रहा है कि सिगरेट पीना बुरा है, और पिता खुद सिगरेट पी रहा है। कितनी देर तक यह बात छिपाई जाएगी? पिता बेटे को कह रहा है कि गाली देना बुरा है, और पिता खुद गालियां दे रहा है। और पिता बेटे को कह रहा है कि दूसरे की स्त्रियों को मां-बहन समझना चाहिए, और पिता खुद नहीं समझ पा रहा है। लड़के इसका पता लगा लेते हैं, यह बहुत देर नहीं लगती। लड़के बहुत बुद्धिमान हैं, उनको दिखाई पड़ने लगता है कि क्या हो रहा है?

यह जो सब उन्हें दिखाई पड़ता है तो आदर असंभव हो जाता है। उन्हें आदर योग्य कोई भी नहीं मिलता। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि नई पीढ़ी पिता के कारण ही परमात्मा तक को मानने से इनकार कर रही है क्योंकि परमात्मा सदा परमपिता की तरह ही सोच गया है। जब पिता धोखेबाज निकला तो परमपिता परम धोखेबाज हो सकता है। पुरानी पीढ़ियों ने पिता के आदर के कारण ही परमात्मा को भी आदर दिया था इसलिए उसको हम परमपिता, गॉड-फादर और सब कहते थे। पिता को इतना आदर था कि ऐसा लगता था, सारा जगत भी किसी पिता के प्रोटेक्शन में है। लेकिन पिता गया कि परमपिता को भी उनके पीछे विदा होना पड़ रहा है। वह नहीं बच सकते। नहीं, पुरानी पीढ़ी को बहुत सोच-समझ की जरूरत है कि वह नये बच्चों का आदर कैसे उपलब्ध कर सकें। आदर के योग्य पात्र होने की जरूरत है।

मैं अभी एक शिक्षकों के सम्मेलन में गया था। वहां सबसे बड़ा सवाल यही था। सब शिक्षकों के मन में यही सवाल है कि विद्यार्थी शिक्षक को आदर नहीं देते, आदर मिलना चाहिए। पहली तो बात है कि आदर मांगने की इच्छा बहुत आदर योग्य नहीं है। क्योंकि जब मैं कहता हूं कि मुझे आदर मिलना चाहिए तभी मैं अपात्र और अनाधिकारी हो जाता हूं। जो आदर मिलने योग्य है, उसे आदर मिलता है, वह चाहता नहीं, वह मांगता नहीं। शिक्षक बहुत परेशान है, आदर मिलना चाहिए। असल में आदर मिलने चाहिए की आकांक्षा तभी पैदा होती है, जब भीतर हम आदर योग्य नहीं रह जाते। उनमें से एक शिक्षक ने वहां कहा कि पुराने शास्त्रों में लिखा है कि गुरु को आदर दिया जाना चाहिए। मैंने उनसे कहाः आपने या तो शास्त्र को गलत पढ़ा होगा, या शास्त्र में गलत लिखा होगा। फिर से शास्त्र लिखना पड़ेगा। उन्होंने कहाः क्या मतलब आपका? मैंने कहाः मैं यह नहीं कहता कि गुरु को आदर दिया जाना चाहिए; मैं कहता हूं, जिसको आदर देना पड़ता है, वह गुरु है। गुरु को आदर दिए जाने का सवाल नहीं है, जिसे आदर देना पड़ता है वह गुरु है। हमें परिभाषा बदल देनी पड़ेगी। जो आदर उपलब्ध कर लेता है वह गुरु है। गुरु को आदर देने का कोई सवाल नहीं है। गुरु कोई प्रोफेशन थोड़े ही है, कोई धंधा थोड़े ही है कि आदर देने की बात कोइ मजबूरी कर दी जाए, कानून बना दिया जाए कि गुरु को आदर हो। वह एक प्रेम का हार्दिक नाता है।

पिता भी अनादृत हुआ है, दुखी है। दुख स्वाभाविक है। लेकिन उसके कारण नहीं खोज रहा है। उसके कारण खोजेगा तो पाएगा कि अनादर के कारण अपने पास हैं। अभी मैं एक घर में रुका। उनके पिता ने कहा कि मेरे लड़के को आप समझाइए। वह किसी लड़की के प्रेम में पड़ा हुआ है और मैं नहीं चाहता कि इस लड़की से

संबंध हो। और मैं हैरान हुआ, क्योंकि ये जो पिता हैं, इन्होंने भी प्रेम-विवाह किया था। तो मैंने उनसे कहाः आप यह क्या कह रहे हैं? तो उन्होंने कहा हमारी बात और थी। सब पिता यही सोचते हैं कि हमारी बात और थी। ये लड़के भी कल पिता होकर यही सोचेंगे कि हमारी बात और थी।

नहीं, इस तरह नहीं चलेगा। इस तरह नहीं चल सकता है। नया युवक भटक नहीं गया है, पुरानी पीढ़ी मार्ग देने में असमर्थ है। अगर हम यह असमर्थता स्वीकार कर लें तो मार्ग बन सकता है, कोई कठिनाई नहीं है। इतना स्वस्थ, इतना बुद्धिमान, इतना विचारशील युवक कब था पृथ्वी पर? यह पहला मौका है, जो सौभाग्य बनना चाहिए वह दुर्भाग्य बन रहा है। इतना विचारशील युवक कब था पृथ्वी पर? कभी भी नहीं था। जो सौभाग्य बन सकती है घटना, वह दुर्भाग्य में बदलती जा रही है।

बुद्धिमत्ता खतरनाक है एक अर्थों में, कि अगर उसे ठीक मार्ग न मिले तो विध्वंसात्मक हो जाती है। घर में दो बेटे हों, एक बेटा अगर गोबरगणेश है तो आज्ञाकारी होगा, सदा आज्ञाकारी होगा, क्योंकि आज्ञा तोड़ने के लिए थोड़ी बुद्धि की जरूरत पड़ती है। हां कहने के लिए किस बुद्धिमत्ता की जरूरत है? न कहने के लिए बुद्धिमत्ता की जरूरत है, क्योंकि न कहने के लिए कारण भी बताने पड़ेंगे, तर्क भी देना पड़ेगा। न कहने के लिए खड़ा होना पड़ेगा, पिता से टक्कर भी लेनी पड़ेगी। तो गोबरगणेश बेटा होगा तो चुपचाप राजी हो जाता है कि हां, पिता खुश होते हैं। बहुत प्रसन्नता की बात है, लड़का बड़ा आज्ञाकारी है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि लड़का बिल्कुल मरा हुआ है, लड़का जिंदा नहीं है।

अगर लड़के में थोड़ी बुद्धिमत्ता होगी तो हजार सवाल उठाएगा, सब बातों पर राजी नहीं हो जाएगा, इनकार करेगा। और पिता को अगर खयाल हो कि मैं सर्वज्ञ हूं तो कष्ट शुरू हो जाएगा। लेकिन कोई सर्वज्ञ नहीं है, पिता होने से कोई सर्वज्ञ नहीं होता। असल में पिता होना इतना सरल है कि उसके लिए बुद्धिमत्ता की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। पिता होने के लिए कौन सी बुद्धिमत्ता की जरूरत है? पिता होना इतनी सरल घटना है, इतनी टेक्नीकल कि उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। लेकिन पिता होने के साथ एक अहंकार जुड़ा रहा है अब तक कि मैं सब जानता हूं।

नहीं, ये बच्चे अब राजी नहीं हो सकते कि आप सब जानते हैं। यह झूठ है बात। अब पिता को जो वह जानता है, उतना ही कहना पड़ेगा, इतना मैं जानता हूं। जो नहीं जानता वह कहना पड़ेगा कि नहीं जानता हूं। और जीवन के सारे सत्य खोल देने पड़ेंगे तो बाप और बेटे के बीच सेतु बन सकता है। लेकिन बाप और बेटे के बीच कोई सेतु नहीं मालूम होता है क्योंकि डॉयलाग ही नहीं होता है। उनके बीच कोई चर्चा ही नहीं है। ऐसा नहीं है कि बाप अपने बेटों को बिठा कर बात कर रहा हो जिंदगी के मसलों की। अपनी तकलीफें बता रहा हो, अपनी भूलें बता रहा हो, अपनी जिंदगी की मुसीबतें बता रहा हो, नहीं, ऐसा नहीं है। बाप एक सख्त रुख रखता है कि मैं सब जानता हूं, मैंने कभी भूल नहीं की, मैं सदा ठीक हूं।

अन्यायपूर्ण है यह बात। इससे बेटों से संबंध बनेगा नहीं, टूट जाएगा। और इसका रिएक्शन, प्रतिक्रिया यह होगी कि बेटे यह समझेंगे कि कुछ भी नहीं जानता है। नहीं, इसे तोड़ना पड़ेगा। और इसे तोड़ने में कौन शुरुआत करे? बेटे शुरुआत करें कि पिता शुरुआत करे? मैं मानता हूं, बेटे शुरुआत करें--यह जरा मुश्किल है। बेटे आखिर बेटे हैं, बच्चे आखिर बच्चे हैं। उनसे हम वृद्धों से ज्यादा बुद्धिमानी की अपेक्षा एकदम से करें तो कठिन है। नहीं, पिता को ही शुरुआत करनी पड़ेगी। उसे मार्ग बनाना पड़ेगा। बेटे से संबंध और मित्रता जोड़नी पड़ेगी। तो हम जिंदगी के संबंध में सवाल उठा सकते हैं, सीख सकते हैं, हल कर सकते हैं।

नई पीढ़ी भटक नहीं गई हैं, नई पीढ़ी सिर्फ अतिरिक्त शक्ति से भरी हुई सामने खड़ी है और हम कोई मार्ग नहीं खोज पा रहे हैं। जैसे कोई झरने में ताकत हो, पानी फूट पड़ने को हो और कोई मार्ग न मिलता हो, पानी सब तरफ से बिखर जाता हो, व्यर्थ हो जाता हो। जैसे आकाश में बिजली चमकती है और हम बिजली को मार्ग न दे सकें तो सिर्फ चमकती है और व्यर्थ हो जाती है। युवकों के पास बड़ी शक्ति है, होनी ही चाहिए। वह बड़ी शक्ति बिल्कुल अनियोजित भटक रही है। उसे कोई नियोजन नहीं है, कोई दिशा नहीं है। दिशा-हारा युवक खड़ा है, लेकिन जिम्मेवार युवक नहीं है। और ध्यान रहे, यह मैं किसी खास पीढ़ी से नहीं कर रहा हूं। आज जो युवक हैं, कल वे पिता हो जाएंगे और वे भी इसी तरह अपने बेटों को जिम्मेवार ठहराने लगेंगे। वही गलती फिर शुरू हो जाएगी।

नहीं, पुरानी पीढ़ी को बहुत शांति से विचार करना चाहिए। क्रोध छोड़ कर बच्चों के निकट आना पड़ेगा और जिंदगी कैसे बने, उसकी दिशाएं सोचनी पड़ेंगी, और साथ खड़े होना पड़ेगा। आज्ञा देने वाले की तरह नहीं, सहयात्री की तरह, एल्डर ब्रदर्स की तरह। पिता भी अब बड़े भाई से ज्यादा नहीं है। उसी भांति उसे खड़ा होना पड़ेगा। पुरानी प्रिस्टिज और पुराने आदर सम्मान का केंद्र अब नहीं चल सकता है। वह बात गई। उस बात को भूल जाना चाहिए। वह इतिहास का अध्याय समाप्त हो गया है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि क्या विद्यार्थी राजनीति में भाग लें?

सवाल बहुत महत्वपूर्ण है, और राजनीतिज्ञ दो तरह के उत्तर देंगे। अगर राजनीतिज्ञ के हित में होगा तो वह कहेगा, राजनीति में भाग लेना चाहिए। जैसे आजादी के पहले कांग्रेस के नेता कहेंगे कि राजनीति में भाग लेना चाहिए। और आजादी के बाद कांग्रेस के नेता कहेंगे विद्यार्थी को राजनीति में भाग कभी नहीं लेना चाहिए। जो पार्टी हुकूमत में है वह कहेगी, राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। जो पार्टी हुकूमत में नहीं है, वह कहेगी राजनीति में भाग लेना चाहिए। राजनीतिज्ञ अपना हित देख कर चलता है। और राजनीतिज्ञ देखता है कि जब युवक की ताकत मिलने से उसे फायदा होगा तो वह कहता है कि भाग लो। और जब उसे दिखता है कि अब हम ताकत में आ गए, और युवक ने अगर भाग लिया तो वह कुर्सी से नीचे उतार सकता है। वह कहता है, भाग मत लो। विद्यार्थियों का काम युनिवर्सिटी में अध्ययन करना है।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और मैं मानता हूं कि चाहे सत्ता में, चाहे सत्ता के बाहर जो लोग भी कहते हैं कि राजनीति में भाग लो, उनके कहने में भी राजनीति है। और जो कहते हैं, राजनीति में भाग मत लो, उनके इस कहने में भी राजनीति है। ये दोनों ही पोलिटिकल हैं--दोनों ही वक्तव्य। लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि विद्यार्थी जिंदगी की तैयारी कर रहा है, उसे जिंदगी में अभी उतरना नहीं चाहिए, तैयारी करनी चाहिए। राजनीति को समझना चाहिए पूरी तरह। राजनीति में भाग लेने का अभी कोई अर्थ नहीं है। राजनीति को समझना चाहिए ताकि जब वह कल भाग लेने की स्थिति में आए तो उसका शोषण न किया जा सके। राजनीतिज्ञ उसका शोषण न कर पाएं। लेकिन गांधी जी ने एक गलत आदत इस मुल्क में डाली।

गांधी जी पहले आदमी हैं जो विद्यार्थी को राजनीति में लाए। रवींद्रनाथ ने विरोध किया था, लेकिन रवींद्रनाथ की कौन सुनता! बल्कि रवींद्रनाथ को लोगों ने देशद्रोही कहा कि यह आदमी देशद्रोही है। गांधी जी ने कहा कि विद्यार्थी छोड़ दें युनिवर्सिटी, और कालेज छोड़ कर आजादी की लड़ाई में आ जाएं। रवींद्रनाथ ने कहाः यह बहुत गलत बात सिखा रहे हैं आप। क्योंकि एक बार विद्यार्थी युनिवर्सिटी को छोड़ कर बाहर आ जाएगा,

तो भीतर ले जाना फिर बहुत मुश्किल पड़ेगा। अब मुश्किल पड़ रहा है। लेकिन लोगों ने कहा कि रवींद्रनाथ देशद्रोही है। गांधी जी देश-प्रेम की बातें कर रहे हैं, विद्यार्थी को अभी पढ़ने का वक्त नहीं है। जब देश गुलाम है तो पढ़ाई कैसी! लड़कों को बाहर आ जाना चाहिए। लड़के बाहर आ गए और जब सबे वह बाहर आए हैं तब से उन्होंने भीतर जाने का नाम ही नहीं लिया है।

आजादी तो आ गई, अब वे भीतर नहीं जाते। अब वे लड़के यह कहते हैं कि अब हमें समाजवाद लाना है। कोई लड़का कहता है, हमें साम्यवाद लाना है, कोई कुछ और कह रहा है। वह कह रहा है, पढ़ना-लिखना कैसा? जब तक साम्यवाद न आ जाए, जब तक समाजवाद न आ जाए? अब पढ़ना-लिखना कभी नहीं हो सकता। एनीबीसेंट ने गांधी जी का विरोध किया तो एनीबीसेंट की सारी इज्जत खतम हो गई। जनता बहुत अदभुत है। एनीबीसेंट की सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई क्योंकि उसने कहा कि यह बात गलत है। विद्यार्थी को विश्वविद्यालय के बाहर लाना बहुत महंगा काम है। आजादी के लिए लड़ने के लिए और कोई नहीं है, विद्यार्थी हैं सिर्फ? यह इतना बड़ा मुल्क है, सिर्फ विद्यार्थी ही आजादी के लिए लड़ने के लिए है? लेकिन गांधी जी विद्यार्थीयों को बाहर ले आए।

असल में गांधी जी तो शिक्षा के विरोधी थे। उन्होंने अपने बेटों को पढ़ाया-लिखाया नहीं, सबकी जिंदगी खराब की। उनके बड़े बेटे ने इसीलिए बगावत की, और उनके बड़े बेटे ने लिखा कि हमारी जिंदगी तुम खराब कर रहे हो। गांधी जी से उसने कहा कि तुम खुद तो पढ़-लिख गए हो और हमें पढ़ा-लिखा नहीं रहे हो। तो गांधी जी कहते थे कि बुनियादी शिक्षा काफी है। बुनियादी शिक्षा से एक आदमी ठीक अर्थों में आदमी ही नहीं बन सकता। बुनियादी शिक्षा का मतलब है, अशिक्षित रहने का उपाय। बुनियादी शिक्षा का मतलब है, चरखा चलाना सीख लो, तकली चलाना सीख लो, जूता सीना सीख लो, कपड़ा बुनना सीख लो, काम पूरा हो गया। फिर आइंस्टीन कैसे पैदा होगा? और फिर अणु-शक्ति कौन खोजेगा और चांद पर कौन पहुंचेगा? अभी तक चरखे पर बैठ कर चांद पर पहुंचने का कोई उपाय तो निकला नहीं। नहीं, लेकिन इतना काफी है। गांधी जी मानते थे, शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। गांधी जी समझते थे, यह शिक्षा बहुत बड़ा रोग है, तो ठीक था कि उन्होंने लोगों को शिक्षा के बाहर ले आए और वे विद्यार्थी अब तक नहीं गए। और हिंदुस्तान की प्रतिभा को भारी नुकसान पहुंच रहा है।

मैं विद्यार्थियों से कहना चाहूंगा, उनके सामने सबसे बड़ा सवाल है, देश की प्रतिभा में रोज नये चांद लगाना। देश की प्रतिभा कितनी निखरे, इसके लिए देश उनको पच्चीस वर्ष तक भोजन की, कपड़े की सारी व्यवस्था कर रहा है। उनसे देश और कोई अपेक्षा नहीं करता। उनसे सिर्फ एक अपेक्षा करता है कि वह देश की प्रतिभा को ऊंचाइयों पर ले जाएं। गौरीशंकर तक पहुंचा दें, शिखरों को छुआ दें। दुनिया में कोई प्रतिभा उनसे आगे न हो। पूरा देश उनके लिए मेहनत करके इस आशा से पच्चीस वर्ष सुरक्षित कर रहा है, और वह--वह अगर राजनीतिक नेताओं के पीछे नारेबाजी में लगे हैं और झंडे लेकर जयजयकार कर रहे हैं तो वे देश के साथ बहुत नुकसान की बात कर रहे हैं, और अपने साथ भी नुकसान की बात कर रहे हैं।

मैं विद्यार्थियों के राजनीति में भाग लेने का एकदम विरोधी हूं। इसलिए विरोधी हूं कि विद्यार्थी का मतलब ही खत्म हो जाता है। हां, विद्यार्थी राजनीति समझे, और ठीक से समझे ताकि कल जब वह पच्चीस साल का होकर युनिवर्सिटी के बाहर आए और जिंदगी में उतरे, तो उसे कोई दो कौड़ी के आदमी राजनीति में धोखेबाजी न कर सकें। कोई भी मुल्क के ऊपर हावी न हो सकें। लेकिन, जो हुकूमत में नहीं हैं वे राजनीतिज्ञ उसको कहते रहेंगे कि राजनीति में आओ। उसे लगाते रहेंगे। आखिर उनकी इतनी आतुरता विद्यार्थी के प्रति क्यों

है? उसका कारण है कि विद्यार्थी शक्ति का स्रोत है। विद्यार्थी जिसके साथ खड़ा हो जाए वह गलत हो कि सही, उसके पास शक्ति उपलब्ध हो जाती है। इसलिए जवान का शोषण हमेशा किया जाता रहा है। चाहे कोई भी मूवमेंट हो, आंदोलन हो, जवान को पकड़ने की कोशिश की जाती है। हिटलर ने नाजी पार्टी बनाई, तो उसने दूसरों की फिकर न की। वह छोटे-छोटे बच्चों और जवानों के पास गया। उसने उनको पकड़ने की कोशिश की क्योंकि कल वे जवान होंगे, कल उनके हाथ में ताकत आएगी और फिर उनके द्वारा सब कुछ करवाया जा सकता है।

सब राजनीतिज्ञ उत्सुक हैं युवकों में, लेकिन युवकों को राजनीतिज्ञों में उत्सुकता बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए। हां, राजनीति में उत्सुकता लेनी चाहिए, लेकिन इस हिसाब से कि हम समझ पाएं। भाग लेने का कोई सवाल नहीं है। भाग लेने का वक्त आएगा। इतनी जल्दी भी क्या है? भाग लेने का वक्त जल्दी आ जाएगा। उसके पहले बुद्धि परिपक्व हो, हम ठीक से समझ पाएं देश का हित क्या है, अहित क्या है, जगत की व्यवस्था क्या है? कुछ भी हम नहीं समझ पा रहे हैं। अगर हिंदुस्तान का विद्यार्थी राजनीति ठीक से समझे तो बहुत हैरान होगा। हिंदुस्तान में राजनीति के नाम से क्या हो रहा है, बहुत अजीब बात है।

हिंदुस्तान का कांस्टीट्यूशन अगर हम उठा कर देखें तो जिसको पहले भानुमती का पिटारा कहते थे, वही है। सारी दुनिया के सारे कांस्टीट्यूशंस में से चुन कर जो भी ठीक मालूम पड़ौ, इकट्ठा कर लिया है। जैसे कि बिल्ली की आंख अच्छी लगी तो आंख ले ली, कुत्ते की टांग अच्छी लगी तो टांग ले ली, सब इकट्ठा कर लिया, कौवे के पंख अच्छे लगे तो पंख ले लिए। अब एक जानवर बना है जिसमें कोई जान ही नहीं है। और वह कोई जानवर भी नहीं है। भगवान भी नहीं पहचान सकता है कि यह कौन है? राजनीतिक बोध हमारा बहुत कम है, अत्यंत कम है।

वह राजनीतिक बोध हिंदुस्तान को कौन देगा? हिंदुस्तान में आने वाली पीढ़ी अगर राजनीति को ठीक से समझती है तो वह बोध पैदा होगा। कैसा दुर्भाग्य है कि एक राजनीतिक पार्टी खड़ी होती है तो चुनाव चिह्न पर भी जीत जाती है। चिह्न बहुत महत्वपूर्ण है। गावों में जाकर समझाया जा सकता है कि अगर बैल न रहेंगे तो तुम खेती कैसे करोगे? और बेचारा किसान सोचता है कि बात तो ठीक है, अगर बैल न रहे तो खेती कैसे करेंगे? बैल जोड़ी को वोट देनी चाहिए।

जहां राजनीतिक चेतना इतनी कम है वहां हिंदुस्तान के युवकों में राजनीतिक चेतना में ठीक निष्णात होने की जरूरत है। राजनीति में भाग जितना जल्दी आप लेंगे, उतने अपरिपक्व होंगे। रुकें, अध्ययन करें, जानें, पहचानें समझें, चारों तरफ की जिंदगी को देखें। दुनिया का इतिहास देखें, दुनिया की आज की व्यवस्था देखें और सोचें कि इस देश के लिए हमें क्या करना है। कल वक्त आएगा, उसके लिए तैयार हो जाएं। लेकिन अगर आज आप कूद जाते हैं, तो सिर्फ आपका शोषण होगा, और कुछ भी नहीं हो सकता है। विद्यार्थी राजनीति में भाग लेंगे, देश का दुर्भाग्य ही हो सकता है, सौभाग्य नहीं।

लेकिन राजनीतिज्ञ चाहते हैं। कुछ चाहते हैं कि भाग लो, कुछ चाहते हैं कि मत लो; लोकिन वे दोनों की राजनीतिक चालें हैं। जो आज कहता है मत लो, अगर कल अपदस्थ हो जाएगा तो वह कहेगा, लो। और जो आज कहता है राजनीति में भाग लो, कल अगर हुकूमत में पहुंच जाएगा, वह कहेगा, बस अब ठीक है, काम पूरा हो गया, अब तुम पढ़ने जाओ। अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।

नहीं, इन दोनों राजनीतिज्ञों से सावधान हो जाने की जरूरत है। हिंदुस्तान को राजनीतिज्ञों से सावधान होना ही पड़ेगा, अन्यथा हिंदुस्तान का राजनीतिज्ञ हिंदुस्तान को रोज नरक में ले जाएगा। वह यात्रा करवा रहा

है। बीस साल में उसने बड़ी कुशलता से यह कार्य किया है। आगे भी वह अपनी कुशलता बढ़ाए चला जा रहा है। मुल्क को नरक में ले जाने के लिए उसकी कुशलता बढ़ती चली जा रही है।

कौन इसे रोकेगा? असल में हम इतने दिन गुलाम थे कि हमारा कोई राजनीतिक बोध--पोलिटिकल कांशसनेस नहीं है, इसलिए हम नारेबाजी से जीते हैं। नारा पकड़ जाए, बस! फिर बात खत्म हो जाती है। फिर हम बहुत गहरे कारणों में नहीं उतरते कि क्या कारण होगा! क्या करने से हित होगा, अहित होगा, वह सब हम नहीं सोचते। हिंदुस्तान आजाद हुआ, अगर हममें राजनीतिक चेतना होती तो जो लोग जेल गए थे, आजादी की लड़ाई लड़ी थी, झंडा उठा कर क्रांति की थी, हम कभी भी उनके हाथ में सत्ता न देते, क्योंकि जेल जाना एक तरह का क्वालिफिकेशन है, सत्ता में होना बिल्कुल दूसरी तरह की योग्यता चाहिए। जेल जाना योग्यता नहीं है, सत्ता में होने की। लेकिन हमने कहा कि जो जेल गए हैं वे महान हैं। बिल्कुल, निश्चित महान हैं, लेकिन जेल जाने में महान हैं। उनको सत्ता देना खतरनाक भी हो सकता है। जो आदमी जिंदगी के बीस साल जेल में गुजारे, उसके हाथ में राजनीति की पूरी बागडोर सौंप देनी महंगी पड़ सकती है--और महंगी पड़ी।

इंग्लैंड में एक चेतना है राजनीति की। मुल्क युद्ध में गया, चर्चिल को उन्होंने बुला लिया कि आ जाओ, सम्हाल लो। क्योंकि वे जानते हैं कि युद्ध में चर्चिल कुशल है। युद्ध खत्म हुआ, फिर उन्होंने नहीं कहा कि चर्चिल हमारे राष्ट्रपिता हैं, अब उनको हम कभी न छोड़ेंगे। अब तो तुम रहो। युद्ध खत्म हुआ, उन्होंने चर्चिल को ऐसे विदा कर दिया कि जैसे पता ही नहीं चला कि चर्चिल ने कुछ बड़ा काम किया हो। चर्चिल ने इतना बड़ा काम किया जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है, लेकिन चर्चिल को चुपचाप विदा कर दिया। क्योंकि जो युद्ध में योग्य था वह कोई राष्ट्र के निर्माण में योग्य होगा, यह जरूरी नहीं है।

हिंदुस्तान में एक राजनीतिक बोध नहीं है। अगर एक आदमी ने जाकर मजदूरों के पैर दबाए, कोढ़ियों की सेवा की--बहुत अच्छा काम किया, उनके फोटो छापो, उनको भारत-रत्न की पदवियां दे दो लेकिन कृपा करके उनको सत्ता मत दें देना। एजुकेशन मिनिस्टर मत बना देना। उपद्रव कर देंगे वह। उपद्रव हो ही जएगा! ऐसी हालत है इस वक्त देश में कि, जिनका शिक्षा से कोइ संबंध नहीं हैं वह शिक्षा मंत्री हैं। लेकिन... जिन्होंने कभी किचन में पैर नहीं रखा, वे खाद्यमंत्री बने हुए हैं! कोइ मतलब नहीं हैं। जिन्होंने कभी सोचा नहीं कि भोजन क्या बला है, वे खाद्यमंत्री होंगे। क्यों? उनकी योग्यता यह है कि वे दस दफा जेल में गए। कुछ समझ में नहीं आता। दस दफा जेल में जाने से किसी को डाक्टर बनाइएगा? दस दफे जेल में जाने से कोई सर्जन बन जाएगा? लेकिन दस दफा जेल में जाने से वह मंत्री बन सकता है। मंत्री क्या सबसे अयोग्य काम है? इसके लिए कोई योग्यता की जरूरत नहीं है?

इस वक्त हिंदुस्तान में अगर चपरासी भी होना हो तो एक विशेष योग्यता की जरूरत है। लेकिन प्रधानमंत्री भी मुल्क का होना हो तो किसी योग्यता की कोई जरूरत नहीं है। सबसे अयोग्य काम, जिसके लिए शिक्षित होने की, योग्य होने की, किसी तरह के विशेष ज्ञान की कोई जरूरत नहीं है, वह राजनीति है। इसलिए राजनीति अशिक्षित, अयोग्य, जो कुछ भी न कर सके, सब तरह से पंगु, बुद्धिहीन, उन सबका धंधा बन गया है। उनका अड्डा वहां खड़ा हो गया है। इससे मुल्क को बचाना पड़ेगा।

आज अजीब हालत है। जो सोच सकते हैं, विचार सकते हैं उनकी कोई आवाज नहीं है। जो जोर से चिल्ला सकता है, मुक्का पटक कर टेबल बजा सकता है, दस-पांच आदमियों को किसी भांति राजी कर सकता है अपने को कि ये बाबूजी हैं, पिताजी हैं कहने के लिए, वह आदमी जीत जाएगा। वह मुल्क में ताकत में पहुंच जाएगा। वह फिर बैठ जाएगा वहां। और एक अजीब जाल है जो बहुत हैरान करनेवाला है।

दिल्ली में मैं होता हूं, देख कर बड़ी हैरानी होती है। बड़े नेताओं से मिलना होता है तो बड़ी हैरानी होती है कि नेता का बड़ा होना क्या जरूरी रूप से बुद्धि का छोटा होना होता है। शरीर तो नेताओं के जरूर बड़े हो गए हैं। और शरीर फैलते जा रहे हैं, अत्यंत कुरूप और बेढ़ंगे चले होते जा रहे हैं, लेकिन बुद्धि भीतर सिकुड़ती जा रही है। बुद्धि का कोई पता नहीं चलता।

एक बड़े नेता के घर में मैं मेहमान था। वे मेरे साथ यात्रा कर रहे थे, फिर कहीं हम रुके थे। तो सुबह-सुबह दूध के लिए घर वालों ने पूछा। तो उन्होंने कहाः मैं गाय का ही दूध पीता हूं, भैंस का नहीं पीता। मैंने कहाः क्या हुआ? उन्होंने कहा कि भैंस का दूध पीने से बुद्धि खराब हो जाती है। तो मैंने कहाः उसके लिए कम से कम बुद्धि होनी तो चाहिए, तभी खराब हो सकती है। आप बेफिकर पीओ, आपको कोई पीने में डर नहीं होना चाहिए। कोई डर की जरूरत नहीं है। ... मगर आप हंसे, वे हंसे भी नहीं। उसके लिए भी समझने की तो बुद्धि चाहिए न? वे मुझे मुंह बाके देखते रह गए कि मैं क्या कह रहा हूं?

एकदम बुद्धिहीन नेतृत्व मुल्क के ऊपर बैठ रहा है। कौन उसे अलग करेगा? आने वाले दस वर्षों में देश की राजनीतिक चेतना विकसित हो तो यह हो सकता है। स्पष्ट रूप से राजनीतिक चेतना विकसित होनी चाहिए। बहुत हैरानी का मामला हुआ है, लेकिन चारों तरफ घटित हो रहा है। और इसे कैसे रोका जाए? युवकों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, लेकिन राजनीति पर गहरी नजर रखनी चाहिए। समझना चाहिए, पहचानना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए। जब वह कल जिंदगी में भाग लेने आएं तो जो भूल पिछले बीस सालों में हमने की है वह आगे न हो--इसका बोध, इसकी मेहनत, इसका श्रम उन्हें उठाना है। लेकिन अगर वे नारेबाजी में लगे, और नेताओं के स्वागत करने में लगे, और बाजार में शोर-गुल मचाने में लगे, और वोट देने और दिलवाने में लगे तो यह राजनीतिक बोध कौन विकसित करेगा? नहीं, फिर यह नहीं हो सकेगा।

देश के युवक के सामने बड़ा सवाल है राजनीतिक चेतना को देश में उन्नत करने का। वह हमारी बिल्कुल नहीं है। एक हजार साल तक गुलाम रहने का परिणाम है कि हमने राजनीतिक बोध खो दिया। हम धीरे-धीरे यही कहने लगे, कुछ भी हो, हमें क्या मतलब है? अपना खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता सब ठीक है। बाकी जो हो रहा है होने दो। "कोई नृप होय हमें का हानी!" हमारा ऐसा भाव होता चला गया। कोई भी हो, होता रहे।

अब यह नहीं चल सकता क्योंकि अब सारे देश की जिंदगी हमारे निर्णय पर निर्भर है। और हम निर्णय लेने वाले कितने बुद्धिमान हैं, इस पर देश का भविष्य निर्भर है।

एक दूसरे युवक ने पूछा है--जरूरी सवाल है, और आज की जिंदगी में महत्वपूर्ण सवाल है। उन्होंने पूछा है कि आज की अर्धनग्न कालेजियन लड़कियों के बारे में आपका क्या खयाल है?

सवाल महत्वपूर्ण है। सवाल इसलिए महत्वपूर्ण है कि कपड़े हमें लगते हैं कि बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं लेकिन महत्वपूर्ण हैं। वे हमारे व्यक्तित्व को निर्मित करते हैं। दो-तीन बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं।। पहली बात तो यह ध्यान में रखनी जरूरी है कि जैसे-जैसे शरीर स्वस्थ होता है और अनुपात में आता है, सुंदर होता है वैसे-वैसे पूरे शरीर को ढंकने का खयाल मिटने लगता है। सिर्फ अत्यंत गरीब, दीन-हीन अविकसित समाज की स्त्रियां पूरे शरीर को ढांकती हैं। जैसे-जैसे शरीर सुंदर होगा वैसे-वैसे शरीर उघड़ना शुरू होगा। जहां-जहां शरीर का सौष्ठव आएगा वहां-वहां कपड़े कम होंगे। इसमें बहुत घबड़ाने की जरूरत नहीं है।

असल में कपड़ों के कम होने से इतनी घबड़ाहट हमें क्यों होती है? उस घबड़ाहट के पीछे कोई कारण है। उस घबड़ाहट के पीछे कारण क्या है? उस घबड़ाहट के पीछे यही कारण है कि हम शरीरों को अर्द्धनग्न देखना चाहते हैं। देखना चाहते हैं--वह हमारी चाह तभी मिटेगी जब शरीर धीरे-धीरे उघाड़े होंगे तभी हमारी चाह मिटेगी। अगर लड़कियों ने हिम्मत की और बीस साल वे ऐसे ही कपड़े पहने रहीं तो हमारी बुद्धि में काफी फर्क पड़ेगा। लेकिन सभी लड़कियों के लिए छोटे कपड़े, कम कपड़े सुंदर नहीं हैं, काव्यपूर्ण नहीं हैं। और कुछ स्त्रियां भी लड़कियां बनने की कोशिश करती हैं, तब जरा मुश्किल हो जाता है।

लड़कियां हलके-फुलके कपड़े पहनें, लड़के हलके-फुलके कपड़े पहनें, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। बूढ़ों की तरह गंभीर कपड़े पहनना उचित भी नहीं है। हलके-फुलके कपड़े पहनें, दौड़ सकें, कूद सकें, फांद सकें, तैर सकें, वृक्षों पर चढ़ सकें, ऐसे कपड़े पहनें, यह उचित है। बच्चों के कपड़े उसी तरह के होने चाहिए। लेकिन जब रोग चलना शुरू होता है तो उसका पता नहीं चलता है, वह कहां पहुंच जाता है। भारी-भरकम मोटी स्त्रियां सड़कों पर ऐसे कपड़े पहने चली जा रही हैं जैसे वे छोटी लड़कियां हों। उन्हें देख कर बहुत बेहूदा मालूम होता है, बहुत असंस्कृत मालूम होता है। इसलिए नहीं कि शरीर पर चुस्त कपड़े सदा बुरे मालूम पड़ते हैं लेकिन शरीर भी तो चुस्त कपड़ों के योग्य तो होना चाहिए।

अब हमारे नेता हैं, वे भी हमारी मोटी स्त्रियों से कम नहीं हैं। चुस्त कपड़े वे भी पहने हुए हैं, पेट तो बहुत बड़ा हो रहा है, चूड़ीदार पाजामा पहने हुए हैं, ऊपर से वह कोट पहने हुए हैं। वह चुस्त पाजामा पहने हुए खड़ा हुआ है, उसको देखो तो अब कोई कार्टून बनाने की जरूरत नहीं है, फोटो उतार लेना काफी है। बेहूदी है वह बात। बिल्कुल बेहूदी है। कपड़ों की अपनी शालीनता है और प्रत्येक तल पर कपड़ों का अपना उपयोग है। एक गंभीर आदमी अगर चुस्त कपड़े पहने तो ठीक नहीं मालूम पड़ता है क्योंकि ढीले कपड़ों की एक अपनी गौरव गरिमा है। चुस्त कपड़ो का एक हल्कापन है।

छोटी-छोटी चीजों का अर्थ है। अगर आपको चुस्त कपड़े पहना दिए जाएं तो आपकी चाल में तेजी आ जाएगी। आप सीढ़ियों पर दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ जाएंगे। और अगर आपको ढीले कपड़े पहना दिए जाएं तो आप दो सीढ़ियां इकट्ठी कभी नहीं चढ़ेंगे, आप एक-एक सीढ़ी चढ़ेंगे। सड़क पर आप आहिस्ता से चलेंगे। कपड़े ढीले होंगे तो एक गंभीरता लाते हैं। लेकिन गंभीरता की एक उम्र है, और गंभीरता के अपने आयाम हैं। कपड़ों की चुस्ती एक बात लाती है। अगर हम मिलिटरी में लोगों को ढीले-ढाले कपड़े पहना दें, साधु-संन्यासियों के वस्त्र पहना दें तो फिर लड़ाई-झगड़ा नहीं हो सकता, फिर लड़ाई-झगड़े के लिए उपाय नहीं हैं। उसके लिए चुस्त कपड़े चाहिए। बंधे हुए कपड़े चाहिए। शरीर और कपड़े में फासला न रहे, यह पता ही न चले कि कपड़ा कोई बाधा दे रहा है, वैसे कपड़े चाहिए।

लड़कियां, युवक चुस्त कपड़े पहनें, बुरा नहीं है। लेकिन चुस्त कपड़े पहनने की दृष्टि पर जरूर विचार करना चाहिए कि क्या दृष्टि होगी चुस्त कपड़े पहनने की? चुस्त कपड़ा पहनने का एक हलकापन है, ताजगी है, गति है, तीव्रता है, श्रम करने की सुविधा है, यह ठीक है। लेकिन अगर चुस्त कपड़े का केवल अर्थ सेक्सुअल एक्सप्रेशन है, अगर केवल यौन अभिव्यक्ति है तो बात जरा बेहूदी है। लेकिन है, वह बात भी है। और वह बात इसीलिए है कि हम चीजों को सीधे नहीं लेते तो उनको हमको उलटे रास्ते से लेना पड़ता है।

अब, एक स्त्री रास्ते से गुजरती हो--चुस्त कपड़े पहनेगी, लेकिन अगर आप उसको गौर से देखें तो नाराज होगी। और कोई पूछे कि फिर इतने चुस्त कपड़े पहन कर वह इस रास्ते से निकली किसलिए हैं? वह निकली

इसलिए है कि आप गौर से देखें। अब बड़ा कंट्राडिक्ट्री मामला हो गया। अगर कोई न देखे तो दुखी घर लौटेगी, अगर कोई देखे तो नाराज होगी। तो मुश्किल की बात हो गई। तब कठिनाई की बात हो गई।

अगर कालेज में एक लड़की पढ़े और कोई उस पर कंकड़ न फेंके तो भी दुख होता है, अगर कंकड़ फेंके तो भी दुख होता है। हालांकि कंकड़ फेंकने से न कंकड़ फेंकने वाला दुख ज्यादा होता है। क्योंकि न कंकड़ फेंकने का मतलब है, कोई ध्यान नहीं दे रहा है। कंकड़ इतनी चोट कभी नहीं पहुंचाता जितना कोई ध्यान न दे तो चोट पहुंचती है। यह भी स्वाभाविक है। दूसरे का ध्यान हमारे ऊपर पड़े यह कुछ अस्वाभाविक नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। आदमी एक सामाजिक प्राणी है, वह दूसरों की आंखों में भी देखना चाहता है, लोग हमें प्रेम करें, पसंद करें, चाहें, यह बिल्कुल स्वभाविक है। उनकी चाह के योग्य हम हों, यह भी बड़ा स्वाभाविक है।

एक बहुत अदभुत घटना मुझे याद आती है। गांधी जी रवींद्रनाथ के पास मेहमान थे। सांझ को घूमने निकलते थे, तो रवींद्रनाथ न कहाः रुकिए, मैं थोड़े बाल बना आऊं। एक बूढ़ा आदमी बाल बनाए, गांधी जी की समझ के बिल्कुल बाहर है। उन्होंने कहाः बाल! लेकिन रवींद्रनाथ से कुछ कह भी न सके। कोई और होता तब तो वह उपदेश देते, लेकिन रवींद्रनाथ को उपदेश देना जरा मुश्किल था। रवींद्रनाथ जब तक जा भी चुके थे। दस मिनट बीत गए, पंद्रह मिनिट बीत गए, गांधी जी का गुस्सा बढ़ता चला गया। भीतर जाकर देखा, वे आदमकद आईने के सामने बड़े मंत्रमुग्ध बाल संवार रहे हैं।

गांधी जी ने कहाः आप और इस उमर में बाल संवार रहे हैं? आप यह कर क्या रहे हैं? तो रवीन्द्रनाथ ने कहा कि जब मैं जवान था तो बिना संवारे भी चल जाता था, जबसे बूढ़ा हो गया, तबसे संवारना पड़ता है। और फिर मैं सड़क पर निकलूं और किसी को असुंदर मालूम पडूं तो भी मैं मानता हूं, मैंने दूसरे को दुख पहुंचाया। वह मेरी दृष्टि में हिंसा ही है। मैं सड़क पर चलूं और किसी को अच्छा लगूं तो मैं उसे मानता हूं, मैंने सुख पहुंचाया। वह मेरी दृष्टि में अहिंसा है।

गांधी जी की पकड़ में ऐसी अहिंसा कभी नहीं आ सकती थी। लेकिन रवींद्रनाथ कुछ बात बड़ी कीमत की कह रहे हैं। गांधी जी की अहिंसा से कहीं ज्यादा कीमत अहिंसा की बात कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि आपकी आंख को भी मैं अप्रीतिकर लगूं, अरुचिकर लगूं, बेहूदा लगूं तो मैंने आपको चोट पहुंचाई है। मैं आपको प्रातिकर लगूं, आनंदपूर्ण लगूं--अच्छा है।

मैं मानता हूं, हिंदुस्तान के बच्चे ऐसे कपड़े पहनें जो प्रीतिकर हों, आनंदपूर्ण हों और चारों तरफ एक सुगंध फैलाते हों, एक हलकापन लाते हों, प्रफुल्लता लाते हों--अच्छा है। हिंदुस्तान बहुत दिन से गंभीर है, इसकी गंभीरता तोड़नी है। इसे थोड़ा हलका-फुलकापन लाना है। यह थोड़ा हंस सके, मुस्कुरा सके, यह जिंदगी में थोड़ा रस ले सके, ऐसी स्थिति पैदा करनी है। इसमें बुरा नहीं है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को अपने कपड़े कनफर्मिटी से नहीं चुनने चाहिए। क्योंकि सभी लड़कियां चुस्त कपड़े पहने हैं इसलिए बाकी लड़कियों को भी चुस्त कपड़े पहनने हैं, तो फिर मूढ़ता हो जाती है। सभी लड़के चुस्त पायजामें पहने हैं, या पेंट पहने हैं, तो बाकी को भी पहनने हैं तो मूढ़ता हो जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के अनुकूल कपड़े चुनने चाहिए। हर व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है। उसे अपने ढंग से सोचना चाहिए। अगर सारे लोग एक से कपड़े पहनने लगें तो यह भी एक बुद्धिहीनता का सबूत है। क्योंकि यह इस बात की खबर है कि हम अपने कपड़े भी इनवेंट नहीं कर सकते। हम इनवेंट क्या करेंगे? हम अपने कपड़े भी नहीं खोज सकते कि मेरे लिए क्या सुखद है, क्या आनंदपूर्ण है। मुझे क्या अच्छा है, वह मुझे खोजना चाहिए।

लेकिन यह मैं मानता हूं कि इधर कपड़ों के संबंध में हमारी रुचि में परिवर्तन हुआ है। और शुभ है परिवर्तन क्योंकि कपड़े उदासी से थोड़े मुक्त हुए है, थोड़े प्रफुल्लता के निकट आए हैं। लेकिन हमारी जो दृष्टि है पुरानी, घूर-घूर कर देखने की, उसके लिए बड़ी मुसीबत हो गई है। उसके लिए बड़ी अड़चन आ गई है। अगर एक स्त्री बुर्का ओढ़ कर जाती हो तो घूरने में बड़ा आनंद आता है क्योंकि घूरने के लिए बड़ा उपाय रहता है। तांगे के चारों तरफ घूमा जा सकता है, झांका जा सकता है। अगर एक स्त्री सीधे-सादे कपड़े पहने हुए बैठी है, उघड़ी ही, अब उसको घूर कर देखना मुश्किल हो जाता है। उसको घूर कर देखो तो अभद्रता मालूम होती है। बुर्का घूरने को सुविधा देता है।

क्या आपने कभी ख्याल किया है कि, हम ऐसे लोगों को लुच्चा कहते हैं। लुच्चे का मतलब होता है, घूर कर देखने वाला। लुच्चा, संस्कृत में लोचन, आंख को कहते हैं। आलोचक कहते है जो खूब सोच-विचार कर किसी चीज को देखता है। लुच्चा उसको कहते हैं, जो देखते ही चला जाता है, आंख हटाता ही नहीं। लुच्चे का मतलब है स्टेयरिंग, एकदम देखते चले जाना। लुच्चे को बड़ी तकलीफ हो गई है क्योंकि अब घूरने को, बहुत देर देखने को कुछ बचा नहीं। चीजें साफ हो गई हैं। जितनी चीजें साफ हो जाएंगी, उतने लुच्चे विदा हो जाएंगे। चीजें साफ हो जानी चाहिए।

अच्छा समाज शरीर के सौष्ठव और अनुपात के प्रति भी रस लेता है। अच्छा समाज शरीर को भी फूल की तरह सुंदर मानता है। शरीर को अस्वीकार नहीं करता, शरीर के आनंद को भी स्वीकार करता है। लेकिन हमारे देश ने हजारों साल से शरीर को अस्वीकार किया है। यहां शरीर को गंदा रखना अध्यात्म है। यहां शरीर को बीमार और पीला बना देना स्वर्ग जाने का उपाय है। यहां ऐसे साधु हैं जो स्नान नहीं करते हैं। ऐसे साधु हैं जो दतौन नहीं करते हैं। ऐसे साधु हैं जो हाथ का मैल नहीं छुड़ाते हैं। ऐसे साधु मुझे कभी मिलने आ जाते हैं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। उनके पास बैठना कठिन है। उनका मुंह बास छोड़ता है, उनके शरीर से गंदगी आती है। लेकिन वे अपने अध्यात्म में बड़े प्रतिष्ठित हैं। ये सब अध्यात्म के सबूत हैं।

नहीं, शरीर के प्रति हमारा विरोध समाप्त करना पड़ेगा। शरीर जिंदगी का एक अदभुत तथ्य है। सच तो यह है कि शरीर इतना बड़ा रहस्य है कि अगर हम शरीर को पूरी तरह जान पाएं तो हम परमात्मा के एक बड़े रहस्य को समझने में समर्थ हो जाएंगे। शरीर के रहस्य का हमें पता ही नहीं है कि शरीर कितना बड़ा रहस्य है। इससे बड़ी मिस्ट्री हुई नहीं। चांद-तारे इतनी बड़ी मिस्ट्री नहीं हैं जितना शरीर--इतना बड़ा रहस्य! आप रोटी खाते हैं, वह कैसे खून बन जाती है और सत्तर साल तक अनवरत श्वास चलती है। सत्तर साल अगर लोहे का फेफड़ा भी हो तो सत्तर साल में जवाब दे दे, लेकिन फेफड़ा काम किए चला जाता है। सत्तर साल तक मस्तिष्क चौबीस घंटे काम करता है। एक क्षण विश्राम नहीं करता है, लेकिन काम करता रहता है। लोहे के तार भी थक जाएं लेकिन बारीक और महीन रेशे वह भी नहीं थकते। शरीर बहुत अदभुत व्यवस्था है। इतना बड़ा यंत्र है कि अगर हम उसे फैला कर देखने जाएं तो एक बड़ी फैक्ट्री भी उतना काम पूरा नहीं कर सकती, जितना एक शरीर--एक छोटा सा शरीर कर रहा है। लेकिन हम उसके प्रति दुष्टता, क्रोध और कठोरता से भरे हैं।

फिर हम फूल के सौंदर्य में आनंदित होते हैं। एक वृक्ष जब हरा हो उठता है तब हम आनंदित होते हैं। जब आकाश में बादल घिरते हैं तब आनंदित होते हैं, और जब एक मोर नाचता है तब हम आनंदित होते हैं, और जब बगुलों की सफेद कतार आकाश से निकल जाती है तब हम प्रसन्न हो जाते हैं। तो आदमी के शरीर का ही क्या कसूर है कि उसे देख कर हम प्रसन्न न हो सकें? बगुले का शरीर आनंद देता है, एक तोते की लाच चोंच आनंद देती है, वृक्षों के हरे शरीर आनंद देते हैं, मोर का नाचते हुए पंखों का फैलाव आत्मा के भीतर भी कुछ फैला देता

है, फिर आदमी के शरीर से ही क्या नाराजगी है? सच तो यह है कि कोई भी शरीर आदमी के शरीर के जितना अदभुत रहस्यपूर्ण नहीं है। लेकिन हमें गलत तरह के धार्मिक लोगों ने शरीर की दुश्मनी सिखाई और इसलिए शरीर के सौंदर्य को तोड़ने के लिए हम आतुर हैं कि शरीर सुंदर न हो। शरीर आकर्षक न हो, शरीर सुगंधित न हो इसलिए हम बड़े आतुर हैं। क्योंकि हम शरीर के दुश्मन हैं।

मैं शरीर का दुश्मन नहीं हूं। और मैं मानता हूं, जो शरीर का दुश्मन है वह आत्मा का प्रेमी क्या हो पाएगा! क्योंकि इसी शरीर में उस आत्मा का वास है। इसी शरीर में उस आत्मा ने अपना निवास चुना है। हम इस शरीर को भी प्रेम करें और इस शरीर के भीतर प्रेम करके प्रवेश करें तो शायद उस आत्मा तक भी पहुंच सकते हैं। तो मैं खिलाफत में नहीं हूं कि कोई सुंदर वस्त्र न पहने। मैं इसकी भी खिलाफत में नहीं हूं कि शरीर के बहुत से अंग उघाड़े हों। मैं इसकी जरा भी खिलाफत में नहीं हूं। खिलाफत में इस बात के हूं कि हमें यह बेचैनी क्यों होती है? एक आदमी को सुख है कि वह जैसा कपड़ा उसे पहनना है, पहन रहा है। हम सब चिंता में क्यों पड़े हुए हैं?

वाइस चांसलर बैठ कर कमेटियां करते हैं और विचार करते हैं कि लड़कियों को कैसे कपड़े पहन कर आने देना है और कैसे कपड़े पहन कर नहीं आने देना है। वाइस चांसलर को और कोई काम नहीं बचा है सोचने का? लड़कियों के कपड़ों की इतनी चिंता है? वाइस चांसलरों के दिमाग का कुछ इलाज होना चाहिए। लड़कियां कपड़े पहनती हैं, यह उनका सुख है। धीरे-धीरे हम उसके लिए राजी हो जाएंगे, धीरे-धीरे हम उन्हें स्वीकार कर लेंगे। कपड़े कम होंगे। शरीर... आप ध्यान रखें। हैरान होंगे, मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शरीर में जो-जो कुरूप है उसे ढांकने के लिए हमने कपड़े ईजाद किए हैं। जो-जो सुंदर हैं उसे हमने प्रकट रखा है। जो-जो कुरूप है उसे हमने दबा लिया है।

महावीर जैसा आदमी नग्न खड़ा हो गया। कोई और समझता होगा कुछ, मैं यही समझता हूं कि महावीर का शरीर इतना सुंदर था, इतना प्रपोर्शनेट, इतने अनुपात में था कि ढांकने की कोई जरूरत न थी। वे पूरे के पूरे सुंदर थे। पूरा शरीर नग्न खड़ा हो गया। उनका सौंदर्य मन को मोह लेने वाला होगा। ढांकने को कुछ भी न था। सिर्फ कुरूपता ढांकी जाती है। जैसे-जैसे मनुष्य-जाति सुंदर होगी, समृद्ध होगी--और निरंतर सुंदर और समृद्ध हो रही है, वैसे-वैसे मनुष्य के कपड़े कम होते चले जाएंगे और मनुष्य नग्न खड़े होने में भी एक तरह का आनंद ले सकेगा। नदी पर, घाट पर, फूल पर, स्नान में, वह नग्न भी हो सकेगा और हमारी बेचैनी खत्म हो जाएगी। हमने शरीर में सिर्फ कुरूप अंगों को छिपाया है। अगर शरीर पूरा सुंदर हो जायें... इसलिए देखना कुरूप आदमी बहुत कपड़े डाल-डूल कर चलता है, वह कपड़ों में अपनी कुरूपता को छिपाता है।

कोई अपने कोट के कंधों में रुई भरे हुए है। अब कंधे उठे हुए होने चाहिए, स्वस्थ पुरुष का लक्षण होना चाहिए। अब वह तो कंधे तो दबे हुए हैं। अब रुई भर कर कंधे उठा लिए तो कोट कैसे निकालें? कोट को पहन कर ही चलना पड़ेगा। तो कोट में आदमी ज्यादा सुंदर मालूम पड़ता है। क्योंकि रुई भरे हुए कंधे, रुई भरी हुई छातियां आदमी को वह दे देती है जो शरीर से मिलना चाहिए।

अगर हम सौ आदमियों को नंगा खड़ा करें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे, जो बड़े सुंदर मालूम पड़ते थे, नंगे खड़े होकर एकदम बेहूदे मालूम पड़ने लगेंगे। उसका कारण यह है कि बाकी शरीर में कुछ भी सुंदर नहीं है, हमने सिर्फ चेहरे की थोड़ी बहुत फिकर कर ली, बाकी शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया है। बाकी शरीर निगलेक्टेड है। अगर आप भी आइने के सामने नंगे खड़ें होंगे तो हैरानी मालूम पड़ेगी कि अपना ही शरीर है, जल्दी ढांको, इसे छिपा लो। शरीर सुंदर होगा, स्वस्थ होगा अनुपात में होगा तो नग्न होने में हमारा डर कम हो जाएगा। डर

का और कोई कारण नहीं है। शरीर उघड़ेगा, शरीर थोड़ा प्रकट होगा। छिपाने की कोई जरूरत नहीं है। आदमी अकेला है पृथ्वी पर जिसने कपड़े पहने हुए हैं। लेकिन कभी आपको खयाल आया, मोर नंगा है। आ सकता है... !

मैंने सुना है, लंदन में महिलाओं की एक समिति है। उसने एक प्रस्ताव किया है कि कुत्तों को कपड़े पहनाना चाहिए। यह दिमाग इनका खराब हो गया है, इन औरतों का। इनको कुत्ते भी नंगे दिखाई पड़ रहे हैं! इनके दिमाग की खराबी है, और कोई कारण नहीं है। यह कुत्ता बेचारा... ! आदमी अब तक नंगा दिखाई पड़ता था, आज कुत्ता नंगा दिखाई पड़ा, कल बैल नंगे दिखाई पड़ेंगे, तो मुश्किल हो जाएगी। हम कहां-कहां नग्नता को ढांकते फिरेंगे। सारी प्रकृति नंगी है, परमात्मा नग्न है, आदमी भर ढंका हुआ है।

नहीं, इतने ढंकने का मोह भी क्या है, इतनी बेचैनी भी क्या है? जिंदगी को सरलता, हलकेपन से, प्रसन्नता से लिया जा सके--ऐसे कपड़े चाहिए, ऐसा रहने-सहने का ढंग चाहिए, इतनी मुक्ति चाहिए... ! और एक-दूसरे की शरीर में आंखें डालने की चेष्टा बहुत ही कुरूप है, लेकिन सप्रेसिव सोसाइटीज में होती हैं। हम एक-दूसरे के कपड़े के भीतर भी देखने की कोशिश करते हैं। अगर आंखें कपड़े के भीतर प्रवेश कर सकें, तो हम आंखों को भीतर ले जा सकते हैं। यह बहुत दमन से भरा हुआ चित्त है हमारा। बहुत कुरूप, अग्ली है, यह सुंदर नहीं है। नहीं, इतनी हमें बेचैनी नहीं लेनी चाहिए। आदमी के स्वास्थ्य के साथ सौंदर्य के साथ कपड़ों में रूपांतरण निश्चित है--हो रहा है--होगा। उसे प्रेम से स्वीकार कर लेंगे, तो हम उसे कलात्मक और सांस्कृतिक ढंग दे सकेंगे। अगर हम प्रेम से स्वीकार न करेंगे तो वह असांस्कृतिक, कुरूप और बेढंगा हो जाएगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है--वह अंतिम सवाल, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं--उन्होंने पूछा है, कुटुंब नियोजन के बाबत, बर्थ-कंट्रोल के बाबत आपके क्या खयाल हैं?

यह अंतिम बात, क्योंकि यह भारत की अंतिम और सबसे बड़ी समस्या है। और अगर हमने इसे हल कर लिया तो हम सब हल कर लेंगे। यह अंतिम समस्या है। यह अगर हल हो गई तो सब हल हो जाएगी। भारत के सामने बड़े से बड़ा सवाल जनसंख्या का है; और रोज बढ़ता जा रहा है। हिंदुस्तान की आबादी इतने जोर से बढ़ रही है कि हम कितनी ही प्रगति करें, कितना ही विकास करें, कितनी ही संपत्ति पैदा करें कुछ परिणाम न होगा। क्योंकि जितना हम पैदा करेंगे उससे चौगुने मुंह हम पैदा कर देते हैं। और सब सवाल वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं, हल नहीं होते।

मनुष्य ने एक काम किया है कि मौत से एक लड़ाई लड़ी है। मौत को हमने दूर हटाया है। हमने प्लेग, महामारियों से मुक्ति पा ली है। हम आदमी को ज्यादा स्वस्थ कर सके। बच्चे जितने पैदा होते हैं, करीब-करीब बचाने का हमने उपाय कर लिया है। हमने मौत से तो लड़ाई लड़ ली, लेकिन हम यह भूल गए कि हमें जन्म से भी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। एकतरफा लड़ाई महंगी पड़ जाएगी। हमने मौत का दरवाजा तो क्षीण कर दिया और जन्म का दरवाजा पुरानी रफ्तार से, बल्कि और बड़ी रफ्तार से जारी है। तो एक उपद्रव मुश्किल हो गया। प्रकृति में एक संतुलन था कि प्रकृति उतने ही लोगों को बचने देती थी इस पृथ्वी पर, जितने लोगों के बचने का उपाय था।

आपको शायद पता न हो, आपने घर में छिपकली देखी होगी दीवारों पर। छिपकली एक बहुत पुराने जानवर का वंशज है। आज से कोई दस लाख साल पहले जमीन पर हाथियों से भी कोई पांच-पांच गुने बडी छिपकलियां थी, वह सब खत्म हो गईं। क्योंकि उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिए कि आत्मघात हो गया। उनके

मरने का और कोई कारण नहीं है। न कोई भूकंप आया, न कोई अकाल पड़ा। उनका कुल कारण यह है कि उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिए कि उन बच्चों के लिए भोजन जुटाना असंभव हो गया और सारी छिपकलियां मर गईं। उनका एक वंशज बहुत छोटे रूप में हमारे घरों में रह गया। हाथियों से बड़े जानवर थे वे। और भी बहुत से जानवरों की जातियां पृथ्वी से तिरोहित हो गई हैं, सदा के लिए विलीन हो गई हैं। कभी थीं, अब नहीं हैं। और उसका कुल कारण एक था कि वे बच्चे पैदा करते चले गए। और सीमा वहां आ गई, जहां भोजन कम पड़ गया और लोग ज्यादा हो गए और मृत्यु के सिवाय कोई रास्ता न रहा।

प्रकृति आदमी के साथ भी अलग तरह का सलूक न करेगी, आदमी इस भूल में न रहे। अगर हम संख्या बढ़ाते चले जाते हैं तो हमारे साथ भी वही होगा जो सब पशुओं के साथ हो सकता है। हमारे साथ कोई भगवान अलग से हिसाब नहीं रखेगा। आज पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोग हैं। हिंदुस्तान की आबादी पाकिस्तान के बंटने के वक्त जितनी थी, पाकिस्तान बंटने से अगर किसी ने सोचा होगा कि हम कम हो जाएंगे तो गलती में है। हमने एक पाकिस्तान को तब तक फिर पैदा कर लिया। आज पाकिस्तान-हिंदुस्तान की आबादी मिल कर बहत्तर करोड़ है। हिंदुस्तान की आबादी उन्नीस सौ तीस में तैंतीस करोड़ थी। तैंतीस करोड़ से बहत्तर करोड़ हो गई--सिर्फ चालीस वर्षों में! इस सदी के पूरे होते-होते हम कहां खड़े होंगे, कहना बहुत मुश्किल है। सभा करने की कोई जरूरत न रह जाएगी, जहां भी होंगे सभा में ही होंगे। कोहनी हिलाने की जगह नहीं रह जाने वाली है। लेकिन इतने लोग कैसे जी सकते हैं?

सारे जगत के सामने सवाल है, हमारे सामने सबसे ज्यादा। सबसे ज्यादा इसलिए है कि समृद्ध कौमें बच्चे कम पैदा करती हैं, गरीब कौमें ज्यादा बच्चे पैदा करती हैं। इसका कारण है। अमरीका में कोई जनसंख्या बढ़ नहीं रही। फ्रांस में तो घट रही है। फ्रांस की सरकार चिंतित है कि कहीं हमारी संख्या न घट जाए। बड़ी अजीब दुनिया है। इधर हम मरे जा रहे हैं कि संख्या बढ़ी जा रही है, उधर फ्रांस में संख्या कम पड़ी जा रही है। फ्रांस की सरकार चिंतित है कि कहीं संख्या कम न हो जाए। बीस साल से ठहरी हुई है संख्या। क्या कारण था?

असल में जैसे आदमी समृद्ध होता है, संपत्तिवान होता है, बुद्धिमान होता है, वैसे ही उसकी जिंदगी में मनोरंजन की बहुत सी दिशाएं खुल जाती हैं। और गरीब के पास मनोरंजन की एक ही दिशा है, सेक्स। और कोई मनोरंजन की दिशा नहीं है। और मुफ्त! कोई टिकट नहीं, कोई पैसा नहीं। कोइ खर्च नहीं। वह दिन भर का थका-मांदा, सिनेमा जाए तो पैसा खर्च हो जाते हैं, नृत्य देखे तो पैसा खर्च हो जाते हैं, रेडियो कहां से लाए, टेलीविजन कहां से लाए। सेक्स एकमात्र उसके पास मुफ्त मनोरंजन है। उसकी वजह से गरीब बच्चे पैदा करता चला जाता है। पहले कोई खतरा न था। पहले भी गरीब बच्चे पैदा करता था। एक आदमी बीस बच्चे पैदा करता था, एकाध बचा लिया तो बहुत, दो बच गए तो बड़ी कृपा भगवान की। वह भी गंडे-ताबीज वगैरह बांध कर मुश्किल से बच पाते थे। लेकिन अब खतरा है, गरीब का बच्चा भी बचेगा। अमीर बच्चे कम पैदा करता है। क्योकि उसके पास मनोरंजन के साधन ज्यादा हैं। इसलिए अमीरों को पहले भी बच्चे गोद लेने पड़ते थे, अब भी लेने पड़ते हैं। उसके पास मनोरंजन के साधन बहुत हैं।

और एक और मजे की बात है कि आदमी जितने आराम में रहे, विश्राम में रहे, उसकी सेक्सुअल एनर्जी उतनी एब्जार्ब हो जाती है। जितने विश्राम में आदमी रहेगा उतनी उसकी काम शक्ति शरीर में विसर्जित हो जाती है। और जितना आदमी श्रम करेगा उतनी काम शक्ति बाहर निकलने के लिए आतुर हो जाती है। इसलिए श्रमिक की तकलीफ है क्योंकि इसके सारे शरीर की काम शक्ति निचोड़ कर इकट्ठी हो जाती है और बाहर फिंकना चाहती है। विश्राम करने वाले आदमी को उतनी काम शक्ति बाहर निकलने के लिए आतुर नहीं करती।

इसलिए संपन्नता बढ़ने के साथ नये आयाम मिलते हैं--मनोरंजन के, सृजन की नई दिशाएं मिलती हैं। और तनाव और श्रम कम हो जाने से शरीर की यौन शक्ति शरीर में विसर्जित हो जाती है।

गरीब मुल्क के सामने बड़ा सवाल है। गरीब मुल्क क्या करे? हम क्या करें? हमारे सज्जन, अच्छे आदमी, जो हमें बड़े महंगे पड़ते रहे हैं, और अब भी महंगे पड़ रहे हैं--वे हमें समझाते हैं कि ब्रह्मचर्य रखो, संयम रखो तो सब ठीक हो जाएगा। कोई ब्रह्मचर्य रख नहीं सकता, न रखता है। कोई रख सके करोड़ में, दो करोड़ में एक व्यक्ति तो उसके लिए उसे इतने शीर्षासन और इतनी चेष्टाएं और इतनी विधियां करनी पड़ती हैं कि संभव नहीं है कि आम--मास स्केल पर ब्रह्मचर्य कभी हो जाए। और फिर अगर किसी को ब्रह्मचर्य रखना हो तो फिर वह एक ही काम कर सकता है कि ब्रह्मचर्य रखे। चौबीस घंटे उसी काम में लगा रहे, फिर दूसरा काम नहीं कर सकता। इसलिए साधु-संन्यासी संसार छोड़ कर भागते हैं, उसका और कोई कारण नहीं है। एक ही काम, पूरा का पूरा एब्जार्बिंग है--ब्रह्मचर्य साधना। इतना खाना खाओ, इतना खाना मत खाओ, यह पानी पीओ, यह पानी मत पीओ, इस तरह सोओ, इस तरह मत सोओ, यह पढ़ो, यह मत पढ़ो, यह देखो, यह मत देखो--चौबीस घंटे वह ब्रह्मचर्य ही साध लें तो पर्याप्त--उनके जीवन की यात्रा हो गई। लेकिन यह बड़ी बेहूदी यात्रा है कि अगर सिर्फ ब्रह्मचर्य सधा तो क्या सध गया? यह मासेस के स्केल पर नहीं हो सकता।

मासेस के स्केल पर, बड़े जन-समूह के पैमाने पर तो कृत्रिम साधनों का, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन भारत का मन उन साधनों का उपयोग करने की तैयारी नहीं दिखा रहा है। अगर हमने तैयार नहीं दिखाई तो हम मरेंगे, अपने हाथ से मरेंगे। और अगर हम तैयारी नहीं दिखाते तो मेरी अपनी समझ यह है कि बर्थ-कंट्रोल कंपल्सरी होना चाहिए। अगर शिक्षा कम्पल्सरी हो सकती है, जो कि उतनी जरूरी बात नहीं है आज।

अगर कुछ लोग अशिक्षित रह जाएं, तो नुकसान होगा, लेकिन भारी नुकसान नहीं हो जाएगा। लेकिन संतति-नियमन--बोर्ड लगे हैं जगह-जगह--"दो या तीन बच्चे, बस"; उससे कुछ होने वाला नहीं है। समझाने से भी कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि अगर हम समझाने में लगे तो... मैं अभी एक आंकड़ा पढ़ रहा था कि अगर हिंदुस्तान के एक-एक आदमी को समझाने की कोशिश की जाए बर्थ-कंट्रोल के लिए, तो कम से कम हमको सौ साल लगेंगे समझाने में, और सौ साल में वे इतने बच्चे पैदा कर देंगे कि उनको कौन समझाएगा? वह सौ साल रुके तो नहीं रहेंगे कि हम जब समझ लेंगे तब बच्चे पैदा करेंगे। वह बच्चे तो पैदा करते रहेंगे। पूरी जमीन पर डेढ़ लाख बच्चे रोज पैदा हो रहे हैं। बड़ा हिस्सा एशिया पैदा कर रहा है। एशिया में भी बड़ा हिस्सा चीन के बाद हम पैदा कर रहे हैं।

नहीं, बर्थ-कंट्रोल, संतति-नियमन समझाने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह जीवन मरण का सवाल है। वह अनिवार्य होना चाहिए। अनिवार्य का मतलब यह है कि दो बच्चों के बाद आपरेशन अनिवार्य होगा। अनिवार्य का यह भी मतलब है कि दो बच्चों के बाद, जिनके पास ज्यादा और बच्चे हैं उन बच्चों पर सरकार सुविधाएं कम कर देगी। जितने जिसके पास कम बच्चे हैं उनको उतनी ज्यादा सुविधाएं मिलनी चाहिए, अभी हालतें उलटी हैं।

अभी हालतें यह हैं कि एक अविवाहित आदमी पर टैक्स ज्यादा है और विवाहित होने पर टैक्स कम है। बच्चे हो जाएं तो और कम है। बड़ी उलटी बात है। बच्चों को कम करना है तो यह उलटा हिसाब लग रहा है। अविवाहित आदमी पर टैक्स बिल्कुल नहीं होना चाहिए--या कम से कम होना चाहिए। विवाहित पर ज्यादा टैक्स होना चाहिए और बच्चे होने पर टैक्स बढ़ता जाना चाहिए, तब हम रोक पाएंगे। और अविवाहित व्यक्ति, और जो निःसंतान रहने को तैयार हैं उनको हमें प्रतिष्ठा देनी चाहिए, आदर देना चाहिए, सम्मान देना चाहिए,

पुरस्कार देना चाहिए। और सब तरफ से दो बच्चों के बाद सख्त, सख्त से सख्त कदम उठा कर रोक देना चाहिए, अन्यथा उन्नीस सौ अठहत्तर तक हमारी संख्या इतनी हो जाएगी कि एक बड़े अकाल की संभावना है जिसमें दस करोड़ लोगों को मरना पड़ेगा--कम से कम--ज्यादा भी मर सकते हैं। अगर सारी दुनिया ने भी हमें खाने की सहायता दी तो भी बीस वर्षों के भीतर एक बड़े अकाल से गुजरने की आशा माननी चाहिए। घबड़ाने वाली बात है। ऐसा न हो, अच्छा है। लेकिन सारी स्थितियां यह कहती हैं कि यह हो जाएगा।

क्या यह अच्छा होगा कि दस करोड़ लोग अकाल में मरें? या हम पहले ही बच्चों को रोकें? लेकिन धर्मगुरु उलटी बातें सिखाते हैं। वे यह कहते हैं कि बच्चे भगवान देता है। भगवान का इसमें कोई हाथ नहीं है, कोई अपराध नहीं। भगवान पर मुकदमा चलाया ही नहीं जा सकता है इस मामले में। मजे की बात यह है कि जो धर्मगुरु यह समझाते हैं कि भगवान देता है बच्चे, वे यह नहीं समझाते कि बीमारी भी भगवान देता है, इसका इलाज नहीं करवाना चाहिए। बीमारी के लिए इलाज करवाने के लिए संन्यासी भी अस्पताल मे भर्ती हो जाते है। बीमारी भगवान ने दी है, इलाज किससे करवा रहे हो? नहीं, बीमारी भगवान की नहीं है, बीमारी डाक्टर से दूर करवाएंगे, और बच्चे भगवान पर थोप देंगे।

बहुत मिरेकल की घटना है कि एक आदमी के शरीर में इतने वीर्याणु बनते हैं एक जिंदगी में कि एक पुरुष से आज पृथ्वी पर जितनी संख्या है उतने बच्चे पैदा हो सकते हैं। एक संभोग में एक पुरुष से इतने वीर्याणु निकलते हैं कि एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। और एक पुरुष सामान्य रूप से जिंदगी में अगर चार हजार बार संभोग करे तो चार हजार करोड़ बच्चों का बाप बन सकता है। यह तो स्त्री की कृपा है कि वह एक ही बच्चे को साल में दे सकती है, नहीं तो हम बड़ी मुश्किल में कभी के पड़ गए होते! बहुत झंझट में पड़ गए होते।

यह रोकना पड़ेगा। न केवल यह रोकना पड़ेगा बल्कि दो तीन बातें मेरे खयाल में और हैं जो मैं कहना चाहूंगा। हमें न केवल संतति पर नियमन करना पड़ेगा, हमें संतति वैज्ञानिक रूप से पैदा हो इसका भी विचार करना होगा। अंधे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, पंगु, बुद्धि-भ्रष्ट, पागल, वे सब बच्चे पैदा करते जाएं, यह बहुत खतरनाक है। यह तो बहुत महंगा है। यह तो सारी रेस को खराब करने की व्यवस्था है। हमें इसकी भी फिकर करनी पड़ेगी कि दो व्यक्ति अगर विवाह करते हैं--तो विवाह तो कोई भी व्यक्ति किसी से भी कर सकता है क्योंकि प्रेम के संबंध में कोई भी कानून नहीं लगाया जा सकता। लेकिन दो व्यक्ति अगर विवाह करते हैं तो विवाह के बाद उनको सर्टिफिकेट लेना ही चाहिए मेडिकल बोर्ड का कि वे बच्चे पैदा कर सकते हैं या नहीं। हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक बहुत खतरनाक है; आगे ठीक नहीं है। साइंटिफिक ब्रीडिंग के लिए उचित नहीं है। क्योंकि कोई भी बच्चे पैदा करता है। एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है, मस्तिष्क खराब है, पागल है, वह भी बच्चे पैदा करता है। तो हम आगे की रेस को खराब करते चले जाते हैं। हमारी प्रतिभा, शक्ति, सौंदर्य सब नष्ट होता चला जाता है। वह हमें रोकना पड़ेगा।

और अब, अब चूंकि आर्टिफिशियल इनसेमिनेशन ने, कृत्रिम गर्भाधारण ने, नई दिशाएं खोज दी हैं, जो बहुत अदभुत हैं। अब यह संभव है कि मैं मर जाऊं तो मेरे मरने के दस बारह साल बाद मेरा बेटा पैदा हो सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई। अब बाप की मौजूदगी बेटे के लिए जरूरी नहीं है। मेरे वीर्य-अणु संरक्षित किए जा सकते हैं। इसका यह मतलब है कि अब हम श्रेष्ठतम व्यक्तियों के, आइंस्टीन के, या बुद्ध के, या महावीर के वीर्य-अणु सुरक्षित कर सकते हैं। श्रेष्ठतम स्त्रियों के वीर्य-अणु सुरक्षित हो सकते हैं। और उन अणुओं से हम नये तरह के ज्यादा श्रेष्ठतम व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं। अब हर व्यक्ति को बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए।

लेकिन हम कहेंगे कि मेरा बच्चा और अणु किसी और का? यह नहीं हो सकता। लेकिन मेरा बच्चा--उसके लिए साइकिल कोई और बनाता है तो चढ़ता है। मेरा बच्चा--गुड्डी कोई और बनाता है। मेरा बच्चा--कपड़े कोई दर्जी सीता है। मेरा बच्चा--दवाई कोई डाक्टर बनाता है। मेरा बच्चा--शिक्षा कोई शिक्षक देता है। जब हम सारी बातों में किसी और से इंतजाम करवा लेते हैं तो व्यक्ति का जो मौलिक अणु है वह मेरे बच्चे के लिए श्रेष्ठतम मिले, यह जो बाप अपने बेटे को प्यार करता है, इसकी फिकर करेगा--करना चाहिए। अब यह संभव है। लेकिन आदमी की कठिनाई यह है कि विज्ञान जिसे संभव बना देता है, आदमी की बुद्धिहीनता के कारण वह सैकड़ों वर्ष तक संभव नहीं हो पाता। अब यह संभव है कि मनुष्य की प्रतिभा बढ़ाई जा सके, बुद्धि बढ़ाई जा सके और श्रेष्ठतम, सुंदरतम स्वस्थतम, मनुष्य को पैदा किया जा सके।

लेकिन वे तो दूर के सपने हैं। अभी तो हमारे सामने सवाल यह है कि हम किसी तरह आती हुई भीड़ को रोक सकें। भीड़ एकदम आकाश से उतर रही हैं, पूरे मुल्क को भरती चली जाएंगी। अगर हमने पचास साल में हिम्मत न दिखाई तो हम अपने हाथ से मर सकते हैं। किसी एटम की, किसी हाइड्रोजन बम की हमारे ऊपर फेंकने की जरूरत न पड़ेगी। हमारा पापुलेशन एक्सप्लोजन ही हमारे लिए हाइड्रोजन बम बन जाएगा। वह जो जनसंख्या फूट रही है, वही हमारी मृत्यु बन सकती है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने इन चार दिनों में कहीं, बहुत बातें कहने को शेष रह गईं। लेकिन जिन्होंने मेरी बातें सुनी हैं वे उन प्रश्नों पर भी इस दिशा में विचार कर सकेंगे जिन पर मैं नहीं बोल सका हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।